ज्ञान-योग-पवित्रता-शान्ति
पथ-प्रदर्शनी

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय
पाण्डव भवन, माऊण्ट आबू (राजस्थान)

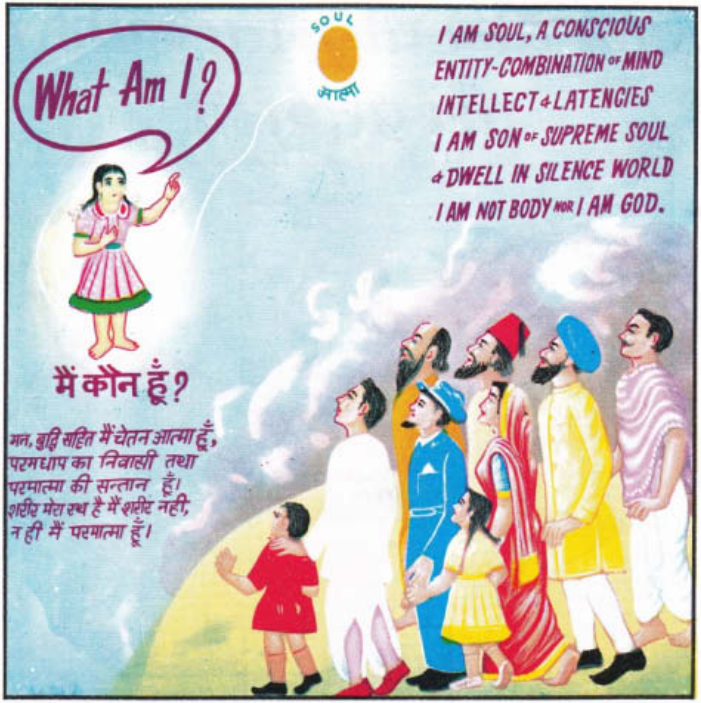

मनुष्य अपने जीवन में कई पहेलियां हल करते हैं और उसके फलस्वरूप इनाम भी पाते हैं। परन्तु इस छोटी-सी पहेली का हल कोई नहीं जानता कि-- "मैं कौन हूँ?" यों तो हर-एक मनुष्य सारा दिन "मैं.. मैं. " कहता ही रहता है, परन्तु यदि उससे पूछा जाय कि "मैं" कहने वाला कौन है? तो वह कहेगा कि-- "मैं कृष्णचन्द हूँ.. या 'मैं' लालचन्द हूँ"। परन्तु सोचा जाय तो वास्तव में यह तो शरीर का नाम है, शरीर तो 'मेरा' है, 'मैं' तो शरीर से अलग हूँ। बस, इस छोटी-सी पहेली का प्रेक्टीकल हल न जानने के कारण, अर्थात् स्वयं को न जानने के कारण, आज सभी मनुष्य देह-अभिमानी हैं और सभी काम, क्रोधादि विकारों के वश हैं तथा दुःखी हैं।

अब परमपिता परमात्मा कहते हैं कि-- "आज मनुष्य में घमण्ड तो इतना है कि वह समझता है कि--"मैं सेठ हूँ, स्वामी हूँ, अफसर हूँ.," परन्तु उस में अज्ञान इतना है कि वह स्वयं को भी नहीं जानता। "मैं कौन हूँ, यह सृष्टि रूपी खेल आदि से अन्त तक कैसे बना हुआ है, मैं इस में कहां से आया, कब आया, कैसे सुख-शान्ति का राज्य गंवाया तथा परमप्रिय परमपिता परमात्मा (इस सृष्टि के रचयिता) कौन हैं?" इन रहस्यों को कोई भी नहीं जानता। अब जीवन की इस पहेली (Puzzle of life) को फिर से जानकर मनुष्य देही-अभिमानी बन सकता है और फिर उसके फलस्वरूप नर को श्री नारायण और नारी को श्री लक्ष्मी पद की प्राप्ति होती है और मनुष्य को मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति मिल जाती है। वह सम्पूर्ण पवित्रता, सुख एवं शान्ति को पा लेता है।

पथ-प्रदर्शनी

जब कोई मनुष्य दु:खी और अशान्त होता है तो वह प्रभु ही से पुकार कर कहता है– "हे दु:ख हर्त्ता, सुख-कर्त्ता, शान्ति-दाता प्रभो, मुझे शान्ति दो।" विकारों के वशीभूत हुआ-हुआ मनुष्य पवित्रता के लिए भी परमात्मा ही की आरती करते हुए कहता है– "विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा!" अथवा "हे प्रभु जी, हम सब को शुद्धताई दीजिए, दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए।" परन्तु परमपिता परमात्मा विकारों तथा बुराइयों को दूर करने के लिए जो ईश्वरीय ज्ञान देते हैं तथा जो सहज राजयोग सिखाते हैं, प्राय: मनुष्य उससे अपरिचित हैं और वे इनको व्यवहारिक रूप में धारण भी नहीं करते। परमपिता परमात्मा तो हमारा पथ-प्रदर्शन करते हैं और हमें सहायता भी देते हैं परन्तु पुरुषार्थ तो हमें स्वत: ही करना होगा, तभी तो हम जीवन में सच्चा सुख तथा सच्ची शान्ति प्राप्त करेंगे और श्रेष्ठाचारी बनेंगे।

अगामी पृष्ठों में परमपिता परमात्मा द्वारा उद्घाटित ज्ञान एवं सहज राजयोग का पथ प्रशस्त किया गया है। इसे चित्र के रूप में भी अंकित किया गया है तथा साथ-साथ हर चित्र की लिखित व्याख्या भी दी गई है ताकि ये रहस्य बुद्धिमय हो जायें। इन्हें पढ़ने से आपको बहुत-से नये ज्ञान-रत्न मिलेंगे। अब प्रैक्टिकल रीति से राजयोग का अभ्यास सीखने तथा जीवन दिव्य बनाने के लिए आप इस ईश्वरीय विश्व-विद्यालय के किसी भी सेवा-केन्द्र पर पधार कर नि:शुल्क ही लाभ उठावें।

अमृत सूची

१.	पथ-प्रदर्शनी	–३
२.	आत्मा क्या है और मन क्या है?	–४
३.	तीन लोक कौनसे है और परमात्मा शिव का धाम कौनसा है?	–७
४.	एक आश्चर्यजनक बात	–८
५.	सर्व आत्माओं का पिता परमात्मा	–११
६.	परमात्मा और उनके दिव्य कर्त्तव्य	–१२
७.	परमात्मा का दिव्य अवतरण	–१५
८.	शिव और शंकर में अन्तर	–१६
९.	एक महान् भूल	–१९
१०.	सृष्टि रूपी उल्टा व अद्भुत वृक्ष	–२०
११.	प्रभु-मिलन का पुरुषोत्तम संगम युग	–२३
१२.	मनुष्य के ८४ जन्मों की अद्भुत कहानी	–२४
१३.	मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियां धारण नहीं करती	–२७
१४.	प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय	–२८
१५.	प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती	–२९
१६.	सृष्टि-नाटक का रचयिता और निर्देशक कौन है?	–३०
१७.	कलियुग अभी बच्चा नहीं है बल्कि बूढ़ा हो गया है	–३३
१८.	क्या रावण के दस सिर थे?	–३४
१९.	मनुष्य-जीवन का लक्ष्य क्या है	–३७
२०.	निकट भविष्य में श्री कृष्ण आ रहे हैं	–३८
२१.	गीता का ज्ञान दाता कौन है?	–४१
२२.	गीता ज्ञान हिंसक युद्ध करने के लिए नहीं दिया गया था	–४२
२३.	जीवन कमल-पुष्प के समान कैसे बने?	–४५
२४.	राजयोग का आधार तथा विधि	–४६
२५.	राजयोग के स्तम्भ अथवा नियम	–४९
२६.	राजयोग से प्राप्ति – अष्ट शक्तियां	–५०
२७.	राजयोग की यात्रा – स्वर्ग की ओर दौड़	–५३

आत्मा क्या है और मन क्या है ?

अपने सारे दिन की बातचीत में मनुष्य प्रतिदिन न जाने कितनी बार 'मैं' शब्द का प्रयोग करता है । परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि प्रतिदिन 'मैं' और 'मेरा' शब्द का अनेकानेक बार प्रयोग करने पर भी मनुष्य यथार्थ रूप में यह नहीं जानता कि 'मैं' कहने वाली सत्ता का स्वरूप क्या है, अर्थात् 'मैं' शब्द जिस वस्तु का सूचक है, वह क्या है ? आज मनुष्य ने साइंस द्वारा बड़ी-बड़ी शक्तिशाली चीजें तो बना डाली हैं, उसने संसार की अनेक पहेलियों का उत्तर भी जान लिया है और वह अन्य अनेक जटिल समस्याओं का हल ढूंढ निकालने में खूब लगा हुआ है, परन्तु 'मैं' कहने वाला कौन है, इसके बारे में वह सत्यता को नहीं जानता अर्थात् वह स्वयं को नहीं पहचानता । आज किसी मनुष्य से पूछा जाये कि - "आप कौन हैं ?" अथवा "आपका क्या परिचय है ?" तो वह झट अपने शरीर का नाम बता देगा अथवा जो धन्धा वह करता है वह उसका नाम बता देगा ।

वास्तव में 'मैं' शब्द शरीर से भिन्न चेतन सत्ता 'आत्मा' का सूचक है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है । मनुष्य (जीवात्मा) आत्मा और शरीर को मिला कर बनता है । जैसे शरीर पांच तत्वों (जल, वायु, अग्नि, आकाश और पृथ्वी) से बना हुआ होता है वैसे ही आत्मा मन, बुद्धि और संस्कारमय होती है । आत्मा में ही विचार करने और निर्णय करने की शक्ति होती है तथा वह जैसा कर्म करती है उसी के अनुसार उसके संस्कार बनते हैं ।

आत्मा एक चेतन एवं अविनाशी ज्योति-बिन्दु है जो कि मानव देह में भृकुटि में निवास करती है । जैसे रात्रि को आकाश में जगमगाता हुआ तारा एक बिन्दु-सा दिखाई देता है, वैसे ही दिव्य-दृष्टि द्वारा आत्मा भी एक तारे की तरह ही दिखाई देती है । इसीलिए एक प्रसिद्ध पद में कहा गया है - "भृकुटि में चमकता है एक अजब तारा, गरीबां नूँ साहिबा लगदा ए प्यारा ।" आत्मा का वास भृकुटि में होने के कारण ही मनुष्य गहराई से सोचते समय यहीं हाथ लगाता है । जब वह यह कहता है कि मेरे तो भाग्य खोटे हैं, तब भी वह यहीं हाथ लगाता है । आत्मा का यहां वास होने के कारण ही भक्त-लोगों में यहां ही बिन्दी अथवा तिलक लगाने की प्रथा है । यहां आत्मा का सम्बन्ध मस्तिष्क से जुड़ा है और मस्तिष्क का सम्बन्ध सारे शरीर में फैले ज्ञान-तन्तुओं से है । आत्मा ही में पहले संकल्प उठता है और फिर मस्तिष्क तथा तंतुओं द्वारा व्यक्त होता है । आत्मा ही शान्ति अथवा दुःख का अनुभव करती तथा निर्णय करती है और उसी में संस्कार रहते हैं । अतः मन और बुद्धि आत्मा से अलग नहीं हैं । परन्तु आज आत्मा स्वयं को भूलकर देह– स्त्री, पुरुष,बूढ़ा जवान इत्यादि मान बैठी है । यह देह-अभिमान ही दुःख का कारण है ।

उपरोक्त रहस्य को मोटर के ड्राईवर के उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट किया गया है । शरीर मोटर के समान है तथा आत्मा इसका ड्राईवर है, अर्थात् जैसे ड्राईवर मोटर का नियन्त्रण करता है, उसी प्रकार आत्मा शरीर का नियन्त्रण करती है । आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण है, जैसे ड्राईवर के बिना मोटर । अतः परमपिता परमात्मा कहते हैं कि अपने आपको पहचानने से ही मनुष्य इस शरीर रूपी मोटर को चला सकता है और अपने लक्ष्य (गन्तव्य स्थान) पर पहुंच सकता है । अन्यथा जैसे कि ड्राईवर कार चलाने में निपुण न होने के कारण दुर्घटना (Accident) का शिकार बन जाता है और कार और उसके यात्रियों को भी चोट लगती है, इसी प्रकार जिस मनुष्य को अपनी पहचान नहीं है वह स्वयं तो दुःखी और अशान्त होता ही है, साथ में अपने सम्पर्क में आने वाले मित्र-सम्बन्धियों को भी दुःखी व अशान्त बना देता है । अतः सच्चे सुख व सच्ची शान्ति के लिए स्वयं को जानना अति आवश्यक है ।

आत्मा क्या है और मन क्या है?

तीन लोक कौनसे हैं
और
परमात्मा शिव का धाम कौन-सा है?

सर्वव्यापकता भावना है, सिद्धांत नहीं

OMNIPRESENCE OF GOD IS A FEELING, NOT A FACT.

तीन लोक कौनसे हैं
और
शिव का धाम कौनसा है ?

मनुष्यात्माएं मुक्ति अथवा पूर्ण शान्ति की शुभ इच्छा तो करती हैं परन्तु उन्हें यह मालूम नहीं है कि मुक्तिधाम अथवा शान्तिधाम है कहां ? इसी प्रकार, परमप्रिय परमात्मा शिव से मनुष्यात्माएँ मिलना तो चाहती हैं और उसे याद भी करती हैं परन्तु उन्हें यह मालूम नहीं है कि वह पवित्र धाम कहां है जहां से आकर परमपिता शिव इसी सृष्टि पर अवतरित होते हैं ? यह कितने आश्चर्य की बात है कि जहां से हम सभी मनुष्यात्माएं सृष्टि रूपी रंगमंच पर आई हैं, उस प्यारे देश को सभी भूल गई हैं और वापिस भी नहीं जा सकतीं ! !

१. साकार मनुष्य लोक - सामने चित्र में दिखाया गया है कि एक है यह साकार 'मनुष्य लोक' जिसमें इस समय हम हैं। इसमें सभी आत्माएं हड्डी-मांसादि का स्थूल शरीर लेकर कर्म करती हैं और उसका फल सुख-दुःख के रूप में भोगती हैं तथा जन्म-मरण के चक्कर में भी आती हैं। इस लोक में संकल्प, ध्वनि और कर्म तीनों हैं। इसे ही 'पांच तत्व की सृष्टि' अथवा 'कर्मक्षेत्र' भी कहते हैं। यह सृष्टि आकाश तत्व के अंश-मात्र में है। इसे सामने त्रिलोक के चित्र में उल्टे वृक्ष के रूप में दिखाया गया है क्योंकि इसके बीज रूप परमात्मा शिव, जो कि जन्म-मरण से न्यारे हैं, ऊपर रहते हैं।

२. सूक्ष्म देवताओं का लोक - इस मनुष्य-लोक के सूर्य तथा तारागण के पार तथा आकाश तत्व के भी पार एक सूक्ष्म लोक है जहां प्रकाश-ही-प्रकाश है। उस प्रकाश के अंश-मात्र में ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव शंकर की अलग-अलग पुरियां हैं। इन देवताओं के शरीर हड्डी-मांसादि के नहीं बल्कि प्रकाश के हैं। इन्हें दिव्य-चक्षु द्वारा ही देखा जा सकता है। यहां दुःख अथवा अशान्ति नहीं होती। यहां संकल्प तो होते हैं और क्रियाएँ भी होती हैं और बातचीत भी होती है परन्तु आवाज़ नहीं होती।

३. ब्रह्मलोक और परलोक - इन पुरियों के भी पार एक और लोक है जिसे 'ब्रह्मलोक', 'परलोक', 'निर्वाण धाम,' 'मुक्तिधाम', 'शान्तिधाम', 'शिवलोक' इत्यादि नामों से याद किया जाता है। इसमें सुनहरे-लाल रंग का प्रकाश फैला हुआ है जिसे ही 'ब्रह्म तत्व', 'छठा तत्व' अथवा 'महातत्व' कहा जा सकता है। इसके अंशमात्र ही में ज्योतिर्बिन्दु आत्माएँ मुक्ति की अवस्था में रहती हैं। यहां हरेक धर्म की आत्माओं के संस्थान (Sections) हैं।

उन सभी के ऊपर, सदा मुक्त, चैतन्य, ज्योति बिन्दु रूप परमात्मा 'सदाशिव' का निवास स्थान है। इस लोक में मनुष्यात्माएँ कल्प के अन्त में, सृष्टि का महाविनाश होने के बाद अपने-अपने कर्मों का फल भोगकर तथा पवित्र होकर ही जाती हैं। यहां मनुष्यात्माएं देह-बन्धन, कर्म-बन्धन तथा जन्म-मरण से रहित होती हैं। यहां न संकल्प है, न वचन और न कर्म। इस लोक में परमपिता परमात्मा शिव के सिवाय अन्य कोई 'गुरु' इत्यादि नहीं ले जा सकता। इस लोक में जाना ही अमरनाथ, रामेश्वरम् अथवा विश्वेश्वर नाथ की सच्ची यात्रा करना है, क्योंकि अमरनाथ परमात्मा शिव यहीं रहते हैं।

एक आश्चर्यजनक बात

प्रायः सभी मनुष्य परमात्मा को 'हे पिता', 'हे दुःखहर्त्ता और सुखकर्त्ता प्रभु', (O! Heavenly God-Father) इत्यादि सम्बन्ध-सूचक शब्दों से याद करते हैं। परन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिसे वे 'पिता' कहकर पुकारते हैं उसका सत्य और स्पष्ट परिचय उन्हें नहीं है और उसके साथ उनका अच्छी रीति स्नेह और सम्बन्ध भी नहीं है! परिचय और स्नेह न होने के कारण परमात्मा को याद करते समय भी उनका मन एक ठिकाने पर नहीं टिकता। इसलिए, उन्हें परमपिता परमात्मा से शान्ति तथा सुख का जो जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त होना चाहिए वह प्राप्त नहीं होता। वे न तो परमपिता परमात्मा के मधुर मिलन का सच्चा सुख अनुभव कर सकते हैं, न उससे लाईट (Light प्रकाश) और माईट (Might शक्ति) ही प्राप्त कर सकते हैं और न ही उनके संस्कारों तथा जीवन में कोई विशेष परिवर्तन ही आ पाता है। इसलिए हम यहां उस परम प्यारे परमपिता परमात्मा का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं जो कि स्वयं उन्होंने ही लोक-कल्याणार्थ हमें समझाया है और अनुभव कराया है और अब भी करा रहे हैं।

परमपिता परमात्मा का दिव्य नाम और उनकी महिमा

परमपिता परमात्मा का नाम 'शिव' है। 'शिव' का अर्थ 'कल्याणकारी' है। परमपिता परमात्मा शिव ही ज्ञान के सागर शान्ति के सागर, आनन्द के सागर और प्रेम के सागर हैं। वह ही पतितों को पावन करने वाले, मनुष्यमात्र को शान्तिधाम तथा सुखधाम की राह दिखाने वाले (Guide), विकारों तथा काल के बन्धन से छुड़ाने वाले (Liberator) और सब प्राणियों पर रहम करने वाले (Merciful) हैं। मनुष्यमात्र को मुक्ति और जीवनमुक्ति का अथवा गति और सद्गति का वरदान देने वाले भी एक-मात्र वही हैं। वह दिव्य-बुद्धि के दाता और दिव्य-दृष्टि के वरदाता भी हैं। मनुष्यात्माओं को ज्ञान रूपी सोम अथवा अमृत पिलाने तथा अमरपद का वरदान देने के कारण 'सोमनाथ' तथा 'अमरनाथ' इत्यादि नाम भी उन्हीं के हैं। वह जन्म-मरण से सदा मुक्त, सदा एकरस, सदा जागती ज्योति, 'सदा शिव' हैं।

परमपिता परमात्मा का दिव्य-रूप

परमपिता परमात्मा का दिव्य-रूप एक 'ज्योति बिन्दु' के समान, दीये की लौ जैसा है। वह रूप अति निर्मल, स्वर्णमय लाल (Golden Red) और मन-मोहक है। उस दिव्य ज्योतिर्मय रूप को दिव्य-चक्षु द्वारा ही देखा जा सकता है और दिव्य-बुद्धि द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। परमपिता परमात्मा के उस 'ज्योति-बिन्दु' रूप की प्रतिमाएं भारत में 'शिव-लिंग' नाम से पूजी जाती हैं और उनके अवतरण की याद में 'महा शिवरात्रि' भी मनाई जाती है।

'निराकार' का अर्थ

लगभग सभी धर्मों के अनुयायी परमात्मा को 'निराकार' (Incorporeal) मानते हैं। परन्तु इस शब्द से वे यह अर्थ लेते हैं कि परमात्मा का कोई भी आकार (रूप) नहीं है। अब परमपिता परमात्मा शिव कहते हैं कि ऐसा मानना भूल है। वास्तव में 'निराकार' का यह अर्थ है कि परमपिता 'साकार' नहीं हैं, अर्थात् न तो उनका मनुष्यों जैसा स्थूल-शारीरिक आकार है और न देवताओं-जैसा सूक्ष्म शारीरिक आकार है बल्कि उनका रूप अशरीरी है और ज्योति-बिन्दु के समान है। 'बिन्दु' को तो 'निराकार' ही कहेंगे। अतः यह एक आश्चर्य-जनक बात है कि परमपिता परमात्मा हैं तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म, एक ज्योति-कण हैं परन्तु आज लोग प्रायः कहते हैं कि वह कण-कण में है।

एक आश्यर्चजनक बात

निराकार परमात्मा और उनके दिव्य गुण

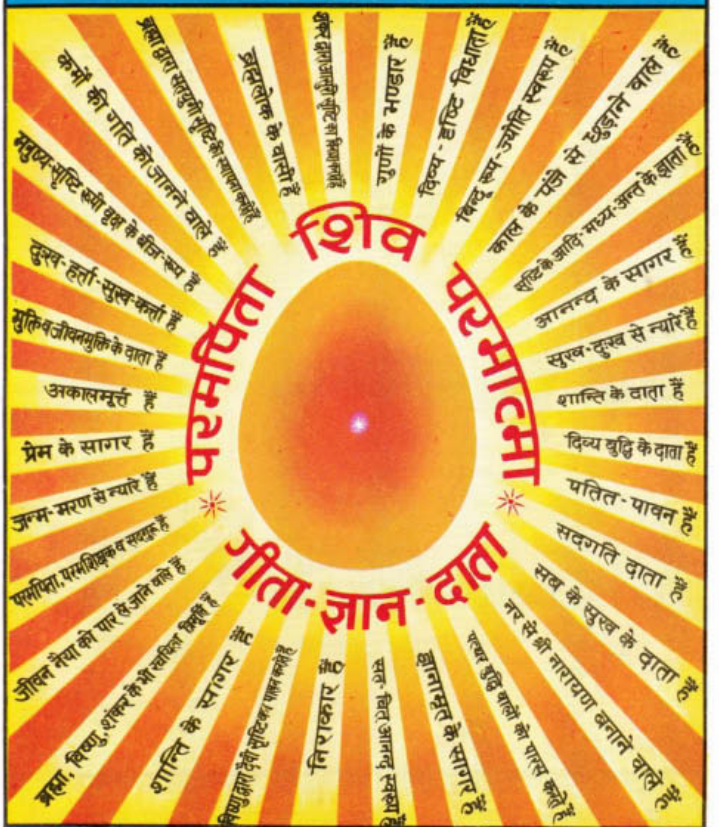

INCORPOREAL GOD & HIS ATTRIBUTES

सर्व आत्माओं के पिता

SUPREME FATHER OF ALL SOULS

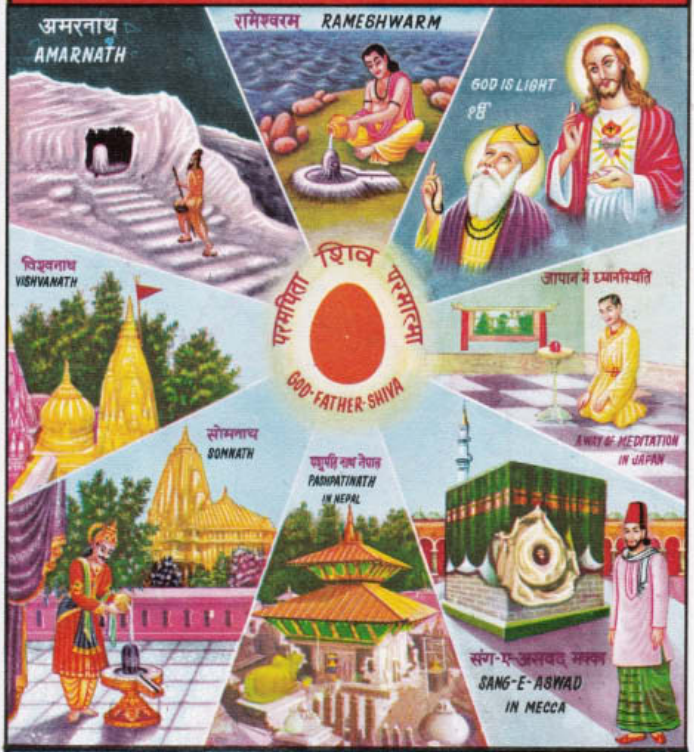

प्रायः सभी धर्मों के लोग परमात्मा को निराकार अर्थात् अशरीरी मानते हैं। शिवलिङ्ग ज्योति-बिन्दु परमात्मा की ही यादगार भारत के कोने कोने में तथा भिन्न भिन्न देशों में पाई जाती है। परमात्मा शिव ही हम सर्वात्माओं के परमपिता, परमशिक्षक एवं परमसद्गुरु हैं। अतः निराकार ज्योति-बिन्दु स्वरूप परमात्मा शिव को याद करने से ही हम पापों से मुक्त हो सकते हैं।

सर्व आत्माओं का पिता परमात्मा एक है और निराकार है

प्राय: लोग यह नारा तो लगाते हैं कि "हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी आपस में भाई-भाई हैं", परन्तु वे सभी आपस में भाई-भाई कैसे हैं और यदि वे भाई-भाई हैं तो उन सभी का एक पिता कौन है— इसे वे नहीं जानते । देह की दृष्टि से तो वे सभी भाई-भाई हो नहीं सकते क्योंकि उनके माता-पिता अलग-अलग हैं; आत्मिक दृष्टि से ही वे सभी एक परमपिता परमात्मा की संतान होने के नाते से भाई-भाई हैं । यहां सभी आत्माओं के एक परमपिता का परिचय दिया गया है । इस स्मृति में स्थित होने से राष्ट्रीय एकता हो सकती है ।

प्राय: सभी धर्मों के लोग कहते हैं कि परमात्मा एक है और सभी का पिता है और सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं । परन्तु प्रश्न उठता है कि वह एक पारलौकिक परमपिता कौन है जिसे सभी मानते हैं ? आप देखेंगे कि भले ही हर एक धर्म के स्थापक अलग-अलग हैं परन्तु हर एक धर्म के अनुयायी निराकार, ज्योति-स्वरूप परमात्मा शिव की प्रतिमा (शिवलिंग) को किसी-न-किसी प्रकार से मान्यता देते हैं । भारतवर्ष में तो स्थान-स्थान पर परमपिता परमात्मा शिव के मन्दिर हैं ही और भक्त-जन 'ओ३म् नमो शिवाय' तथा तुम्हीं हो माता तुम्हीं पिता हो' इत्यादि शब्दों से उसका गायन व पूजन भी करते हैं और शिव को श्रीकृष्ण तथा श्री राम इत्यादि देवों के भी देव अर्थात् परमपूज्य मानते ही हैं परन्तु भारत से बाहर, दूसरे धर्मों के लोग भी इसको मान्यता देते हैं । यहां सामने दिये चित्र में दिखाया गया है कि शिव का स्मृति-चिन्ह सभी धर्मों में है ।

अमरनाथ, विश्वनाथ, सोमनाथ और पशुपतिनाथ इत्यादि मन्दिरों में परमपिता परमात्मा शिव ही के स्मरण चिह्न हैं । 'गोपेश्वर' तथा 'रामेश्वर' के जो मन्दिर हैं उनसे स्पष्ट है कि 'शिव' श्री कृष्ण तथा श्री राम के भी पूज्य हैं । राजा विक्रमादित्य भी शिव ही की पूजा करते थे । मुसलमानों के मुख्य तीर्थ मक्का में भी एक इसी आकार का पत्थर है जिसे कि सभी मुसलमान यात्री बड़े प्यार व सम्मान से चूमते हैं । उसे वे 'संगे-असवद' कहते हैं और इब्राहिम तथा मुहम्मद द्वारा उनकी स्थापना हुई मानते हैं । परन्तु आज वे भी इस रहस्य को नहीं जानते कि उनके धर्म में बुतपरस्ती (प्रतिमा पूजा) की मान्यता न होते हुए भी इस आकार वाले पत्थर की स्थापना क्यों की गई है और उनके यहां इसे प्यार व सम्मान से चूमने की प्रथा क्यों चली आती है ? इटली में कई रोमन कैथोलिक्स ईसाई भी इसी प्रकार वाली प्रतिमा को अपने ढंग से पूजते हैं । ईसाइयों के धर्म-स्थापक ईसा ने तथा सिक्खों के धर्म-स्थापक नानक जी ने भी परमात्मा को एक निराकार ज्योति (Kindly Light) ही माना है । यहूदी लोग तो परमात्मा को 'जेहोवा' (Jehovah) नाम से पुकारते हैं जो नाम शिव (Shiva) का ही रूपान्तर मालूम होता है । जापान में भी बौद्ध-धर्म के कई अनुयायी इसी प्रकार की एक प्रतिमा अपने सामने रखकर उस पर अपना मन एकाग्र करते हैं ।

परन्तु समयान्तर में सभी धर्मों के लोग यह मूल बात भूल गए हैं कि शिवलिंग सभी मनुष्यात्माओं के परमपिता का स्मरण-चिह्न है । यदि मुसलमान यह बात जानते होते तो वे सोमनाथ के मन्दिर को कभी न लूटते, बल्कि मुसलमान, ईसाई इत्यादि सभी धर्मों के अनुयायी भारत को ही परमपिता परमात्मा की अवतार-भूमि मानकर इसे अपना सबसे मुख्य तीर्थ मानते और इस प्रकार संसार का इतिहास ही कुछ और होता । परन्तु एक पिता को भूलने के कारण संसार में लड़ाई-झगड़ा, दु:ख तथा क्लेश हुआ और सभी अनाथ व कंगाल बन गये ।

परमपिता परमात्मा और उनके दिव्य कर्त्तव्य

सामने परमपिता परमात्मा ज्योति-बिन्दु शिव का जो चित्र दिया गया है, उस द्वारा समझाया गया है कि कलियुग के अन्त में धर्म-ग्लानि अथवा अज्ञान-रात्रि के समय, शिव सृष्टि का कल्याण करने के लिए

सबसे पहले तीन सूक्ष्म देवता-ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को रचते हैं और, इस कारण, शिव 'त्रिमूर्ति' कहलाते हैं। तीन देवताओं की रचना करने के बाद वह स्वयं इस मनुष्य-लोक में एक साधारण एवं वृद्ध भक्त के तन में अवतरित होते हैं, जिनका नाम वे 'प्रजापिता ब्रह्मा' रखते हैं।

प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा ही परमात्मा शिव मनुष्यात्माओं को पिता, शिक्षक तथा सद्गुरु के रूप में मिलते हैं और सहज गीता-ज्ञान तथा सहज राजयोग सिखा कर उनकी सद्गति करते हैं, अर्थात् उन्हें जीवन-मुक्ति देते हैं।

शंकर द्वारा कलियुगी सृष्टि का महाविनाश

कलियुग के अन्त में प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा सतयुगी दैवी सृष्टि की स्थापना के साथ परमपिता परमात्मा शिव पुरानी, आसुरी सृष्टि के महाविनाश की तैयारी भी शुरू करा देते हैं। परमात्मा शिव शंकर के द्वारा विज्ञान-गर्वित (Science-Proud) तथा विपरीत-बुद्धि अमेरिकन लोगों तथा यूरोप-वासियों (यादवों) को प्रेर कर उन द्वारा ऐटम और हाईड्रोजन बम और मिसाइल्स (Missiles) तैयार कराते हैं, जिन्हें कि महाभारत में 'मूसल' तथा 'ब्रह्मास्त्र' कहा गया है। इधर वे भारत में भी देह-अभिमानी, धर्मभ्रष्ट तथा विपरीत बुद्धि वाले लोगों (जिन्हें महाभारत की भाषा में 'कौरव' कहा गया है) को पारस्परिक युद्ध (Civil War) के लिए प्रेरते हैं।

विष्णु द्वारा पालना

विष्णु की चार भुजाओं में से दो भुजाएं श्री नारायण की और दो भुजाएं श्री लक्ष्मी की प्रतीक हैं। 'शंख' उनका पवित्र वचन अथवा ज्ञान-घोष की निशानी है, 'स्वदर्शन चक्र' आत्मा (स्व) के तथा सृष्टिचक्र के ज्ञान का प्रतीक है, 'कमल पुष्प' संसार में रहते हुए अलिप्त तथा पवित्र रहने का सूचक है तथा 'गदा' माया पर, अर्थात् पांच विकारों पर विजय का चिह्न है। अतः मनुष्यात्माओं के सामने विष्णु चतुर्भुज का लक्ष्य रखते हुए परमपिता परमात्मा शिव समझाते हैं कि इन अलंकारों को धारण करने से अर्थात् इनके रहस्य को अपने जीवन में उतारने से नर 'श्री नारायण' और नारी 'श्री लक्ष्मी' पद प्राप्त कर लेती है, अर्थात् मनुष्य दो ताजों वाला 'देवी' या 'देवता' पद पा लेता है। इन दो ताजों में से एक ताज तो प्रकाश का ताज अर्थात् प्रभा-मंडल (Crown of Light) है जो कि पवित्रता व शान्ति का प्रतीक है और दूसरा रत्न-जड़ित सोने का ताज है जो सम्पत्ति अथवा सुख का अथवा राज्य-भाग्य का सूचक है।

इस प्रकार, परमपिता परमात्मा शिव सतयुगी तथा त्रेतायुगी पवित्र, दैवी सृष्टि (स्वर्ग) की पालना के संस्कार भरते हैं, जिसके फल-स्वरूप ही सतयुग में श्री नारायण तथा श्री लक्ष्मी (जो कि पूर्व जन्म में प्रजापिता ब्रह्मा और सरस्वती थे) तथा सूर्यवंश के अन्य राजा प्रजा-पालन का कार्य करते हैं और त्रेतायुग में श्री सीता व श्री राम और अन्य चन्द्रवंशी राजा राज्य करते हैं।

मालूम रहे कि वर्तमान समय परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा तथा तीनों देवताओं द्वारा उपर्युक्त तीनों कर्तव्य करा रहे हैं। अब हमारा कर्तव्य है कि परमपिता परमात्मा शिव तथा प्रजापिता ब्रह्मा से अपना आत्मिक सम्बन्ध जोड़कर पवित्र बनने का पुरुषार्थ करें व सच्चे वैष्णव बनें। मुक्ति और जीवनमुक्ति के ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार के लिए पूरा पुरुषार्थ करें।

परमपिता परमात्मा और उनके दिव्य कर्त्तव्य

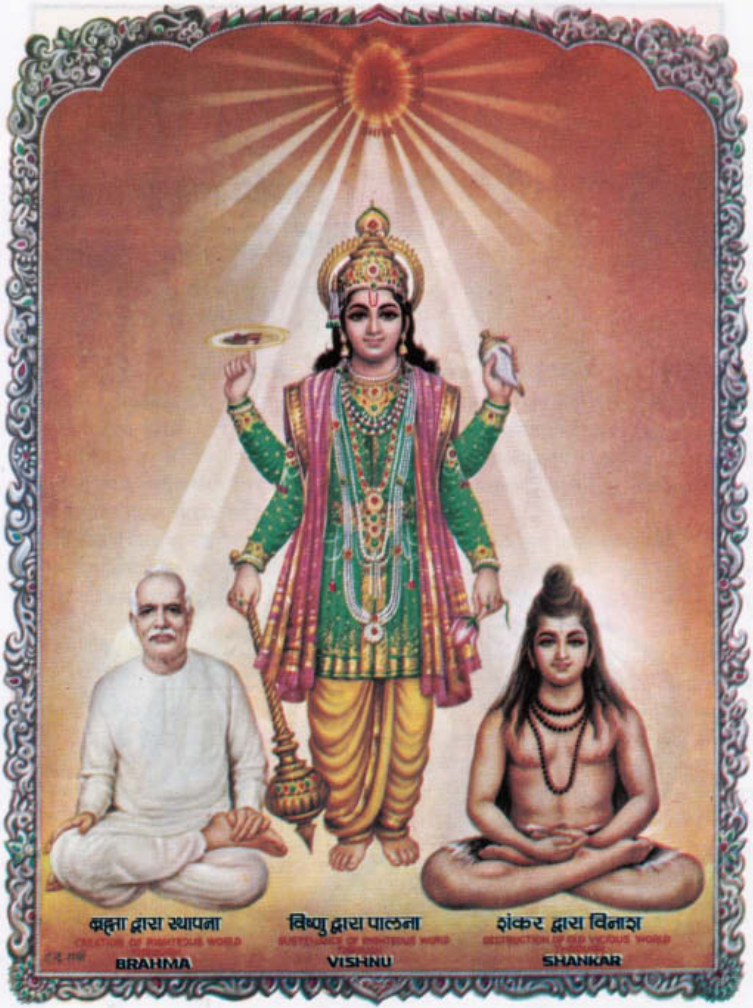

परमात्मा का दिव्य अवतरण

परमात्मा का दिव्य-अवतरण

शिव का अर्थ है — 'कल्याणकारी'। परमात्मा का यह नाम इसलिए है, वह धर्म-ग्लानि के समय, जब सभी मनुष्यात्माएं माया (पांच विकारों) के कारण दु:खी, अशान्त, पतित एवं भ्रष्टाचारी बन जाती हैं तब उनको पुन: पावन तथा सम्पूर्ण सुखी बनाने का कल्याणकारी कर्त्तव्य करते हैं। शिव ब्रह्मलोक में निवास करते हैं और वे कर्म-भ्रष्ट तथा धर्म भ्रष्ट संसार का उद्धार करने के लिए ब्रह्मलोक से नीचे उतर कर एक मनुष्य के शरीर का आधार लेते हैं। परमात्मा शिव के इस अवतरण अथवा दिव्य एवं अलौकिक जन्म की पुनीत-स्मृति में ही 'शिव रात्रि', अर्थात् शिवजयन्ती का त्यौहार मनाया जाता है।

परमात्मा शिव जो साधारण एवं वृद्ध मनुष्य के तन में अवतरित होते हैं, उसको वे परिवर्तन के बाद 'प्रजापिता ब्रह्मा' नाम देते हैं। उन्हीं की याद में शिव की प्रतिमा के सामने ही उनका वाहन 'नन्दी-गण' दिखाया जाता है। क्योंकि परमात्मा सर्व आत्माओं के माता-पिता हैं, इसलिए वे किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लेते बल्कि ब्रह्मा के तन में संनिवेश ही उनका दिव्य-जन्म अथवा अवतरण है।

अजन्मा परमात्मा शिव के दिव्य-जन्म की रीति न्यारी

परमात्मा शिव किसी पुरुष के बीज से अथवा किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लेते क्योंकि वे तो स्वयं ही सबके माता-पिता हैं, मनुष्य-सृष्टि के चेतन बीज रूप हैं और जन्म-मरण तथा कर्म-बन्धन से रहित हैं। अत: वे एक साधारण मनुष्य के वृद्धावस्था वाले तन में प्रवेश करते हैं। इसे ही परमात्मा शिव का 'दिव्य-जन्म' अथवा 'अवतरण' भी कहा जाता है क्योंकि जिस तन में वे प्रवेश करते हैं वह एक जन्म-मरण तथा कर्म बन्धन के चक्कर में आने वाली मनुष्यात्मा ही का शरीर होता है, वह परमात्मा का 'अपना' शरीर नहीं होता।

अत: चित्र में दिखाया गया है कि जब सारी सृष्टि माया (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पांच विकारों) के पंजे में फंस जाती है तब परमपिता परमात्मा शिव, जो कि आवागमन के चक्कर से मुक्त हैं, मनुष्यात्माओं को पवित्रता, सुख और शान्ति का वरदान देकर माया के पंजे से छुड़ाते हैं। वे ही सहज ज्ञान और राजयोग की शिक्षा देते हैं तथा सभी आत्माओं को परमधाम में ले जाते हैं तथा मुक्ति एवं जीवन्मुक्ति का वरदान देते हैं।

शिवरात्रि का त्यौहार फाल्गुन मास, जो कि विक्रमी सम्वत् का अन्तिम मास होता है, में आता है। उस समय कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी होती है और पूर्ण अन्धकार होता है। उसके पश्चात्, शुक्ल पक्ष का आरम्भ होता है और कुछ ही दिनों बाद नया सम्वत् प्रारम्भ होता है। अत: रात्रि की तरह फाल्गुन की कृष्ण चतुर्दशी भी आत्माओं को अज्ञान अन्धकार, विकार अथवा आसुरी लक्षणों की पराकाष्ठा के अन्तिम चरण का बोधक है। इसके पश्चात् आत्माओं का शुक्ल पक्ष अथवा नया कल्प प्रारम्भ होता है, अर्थात् अज्ञान और दु:ख के समय का अन्त होकर पवित्र तथा सुख का समय शुरू होता है।

परमात्मा शिव अवतरित होकर अपने ज्ञान, योग तथा पवित्रता द्वारा आत्माओं में आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न करते हैं। इसी महत्व के फलस्वरूप भक्त लोग शिवरात्रि को जागरण करते हैं। इस दिन मनुष्य उपवास, व्रत आदि भी रखते हैं। उपवास (उप-निकट, वास-रहना) का वास्तविक अर्थ है ही परमात्मा के समीप हो जाना। अब परमात्मा से युक्त होने के लिए पवित्रता का व्रत लेना ज़रूरी है।

शिव और शंकर में अन्तर

बहुत से लोग शिव और शंकर को एक ही मानते हैं, परन्तु वास्तव में इन दोनों में भिन्नता है। आप देखते हैं कि दोनों की प्रतिमाएँ भी अलग-अलग आकार वाली होती हैं। शिव की प्रतिमा अण्डाकार अथवा अंगुष्ठाकार होती है जबकि महादेव शंकर की प्रतिमा शारीरिक आकार वाली होती है। यहां उन दोनों का अलग-अलग परिचय, जो कि परमपिता परमात्मा शिव ने अब स्वयं हमें समझाया है तथा अनुभव कराया है स्पष्ट किया जा रहा है :-

महादेव शंकर

१.यह ब्रह्मा और विष्णु की तरह सूक्ष्म शरीरधारी हैं। इन्हें 'महादेव' कहा जाता है परन्तु इन्हें 'परमात्मा' नहीं कहा जा सकता।
२.यह ब्रह्मा देवता तथा विष्णु देवता की तरह सूक्ष्म लोक में, शंकरपुरी में वास करते हैं।
३.ब्रह्मा देवता तथा विष्णु देवता की तरह यह भी परमात्मा शिव की रचना है।
४.यह केवल महाविनाश का कार्य करते हैं, स्थापना और पालना के कर्तव्य इनके कर्तव्य नहीं है।

परमपिता परमात्मा शिव

१.यह चेतन ज्योति-बिन्दु हैं और इनका अपना कोई स्थूल या सूक्ष्म शरीर नहीं है, यह परमात्मा है।
२.यह ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर के लोक, अर्थात् सूक्ष्म देव लोक से भी परे 'ब्रह्मलोक' (मुक्तिधाम) में वास करते हैं।
३.यह ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर के भी रचयिता अर्थात् 'त्रिमूर्ति' हैं।
४.यह ब्रह्मा द्वारा स्थापना, शंकर द्वारा महाविनाश और विष्णु द्वारा विश्व का पालन कराके विश्व का कल्याण करते हैं।

शिव का जन्मोत्सव रात्रि में क्यों ?

'रात्रि' वास्तव में अज्ञान, तमोगुण अथवा पापाचार की निशानी है। अत: द्वापरयुग और कलियुग के समय को 'रात्रि' कहा जाता है। कलियुग के अन्त में जबकि साधु, संन्यासी, गुरु, आचार्य इत्यादि सभी मनुष्य पतित तथा दु:खी होते हैं और अज्ञान-निद्रा में सोये पड़े होते हैं, जब धर्म की ग्लानि होती है और जब यह भारत विषय-विकारों के कारण वेश्यालय बन जाता है, तब पतित-पावन परमपिता परमात्मा शिव इस सृष्टि में दिव्य-जन्म लेते हैं। इसलिए अन्य सबका जन्मोत्सव तो 'जन्म दिन' के रूप में मनाया जाता है परन्तु परमात्मा शिव के जन्म-दिन को 'शिवरात्रि' (Birth-night) ही कहा जाता है। अत: यहां चित्र में जो कालिमा अथवा अन्धकार दिखाया गया है वह अज्ञानान्धकार अथवा विषय-विकारों की रात्रि का द्योतक है।

ज्ञान-सूर्य शिव के प्रकट होने से सृष्टि से अज्ञानान्धकार तथा विकारों का नाश

जब इस प्रकार अवतरित होकर ज्ञान-सूर्य परमपिता परमात्मा शिव ज्ञान-प्रकाश देते हैं तो कुछ ही समय में ज्ञान का प्रभाव सारे विश्व में फैल जाता है और कलियुग तथा तमोगुण के स्थान पर संसार में सतयुग और सतोगुण की स्थापना हो जाती है और अज्ञान-अन्धकार का तथा विकारों का विनाश हो जाता है। सारे कल्प में परमपिता परमात्मा शिव के एक अलौकिक जन्म से थोड़े ही समय में यह सृष्टि वेश्यालय से बदल कर शिवालय बन जाती है और नर को श्री नारायण पद तथा नारी को श्री लक्ष्मी पद की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए शिवरात्रि हीरे तुल्य है।

शिव और शंकर में अन्तर

एक महान भूल

परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिवान है परन्तु सर्वव्यापी नहीं

GOD IS NOT OMNIPRESENT

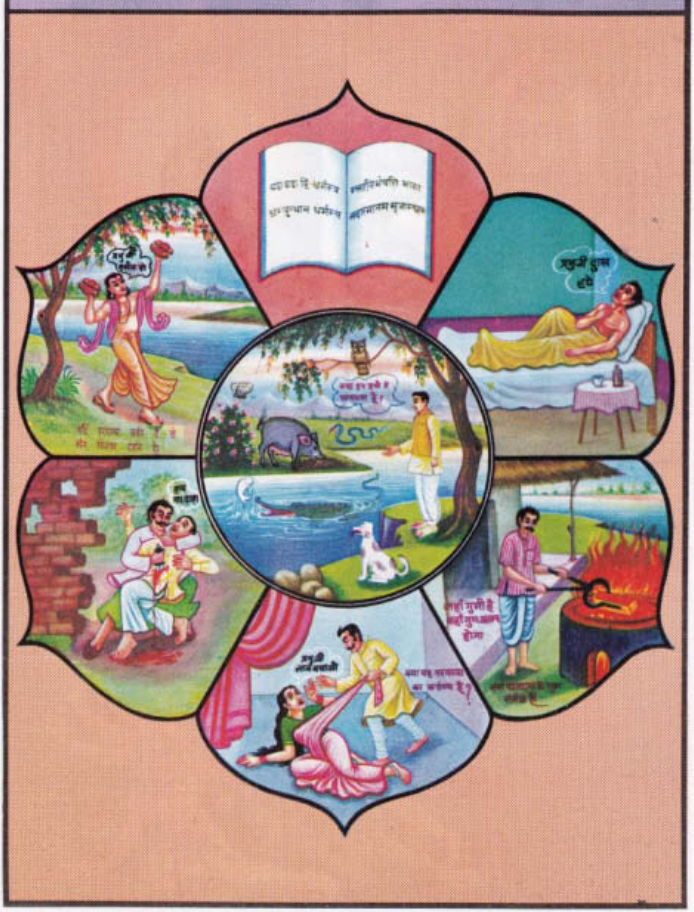

एक महान भूल

यह कितने आश्चर्य की बात है कि आज एक ओर तो लोग परमात्मा को 'माता-पिता' और 'पतित पावन' मानते हैं और दूसरी ओर कहते हैं कि परमात्मा सर्व-व्यापक है, अर्थात् वह तो ठीकर-पत्थर, सर्प, बिच्छू, वाराह, मगरमच्छ, चोर और डाकू, सभी में है ! ओह, अपने परम प्यारे, परम पावन, परमपिता के बारे में यह कहना कि वह कुत्ते में, बिल्ले में, सभी में है — यह कितनी बड़ी भूल है ! यह कितना बड़ा पाप है ! ! जो पिता हमें मुक्ति और जीवन्मुक्ति की विरासत (जन्म-सिद्ध अधिकार) देता है, और हमें पतित से पावन बनाकर स्वर्ग का राज्य देता है, उसके लिए ऐसे शब्द कहना गोया कृतघ्न बनना ही तो है ! ! !

यदि परमात्मा सर्वव्यापी होते तो उसके शिवलिंग रूप की पूजा क्यों होती ? यदि वह यत्र-तत्र-सर्वत्र होते तो वह 'दिव्य जन्म' कैसे लेते, मनुष्य उनके अवतरण के लिए उन्हें क्यों पुकारते और शिवरात्रि का त्योहार क्यों मनाया जाता ? यदि परमात्मा सर्व-व्यापक होते तो वह गीता-ज्ञान कैसे देते और गीता में लिखे हुए उनके यह महावाक्य कैसे सत्य सिद्ध होते कि "मैं परम पुरुष (पुरुषोत्तम) हूँ, मैं सूर्य और तारागण के प्रकाश की पहुँच से भी परे परमधाम का वासी हूँ; यह सृष्टि एक उल्टा वृक्ष है और मैं इसका बीज हूँ जो कि ऊपर रहता हूँ।"

यह जो मान्यता है कि "परमात्मा सर्वव्यापी है" — इससे भक्ति, ज्ञान, योग इत्यादि सभी का खण्डन हो गया है क्योंकि यदि ज्योतिस्वरूप भगवान का कोई नाम और रूप ही न हो तो न उनसे सम्बन्ध (योग) जोड़ा जा सकता है, न ही उनके प्रति स्नेह और भक्ति ही प्रगट की जा सकती है और न ही उनके नाम और कर्तव्यों की चर्चा ही हो सकती है जबकि 'ज्ञान' का तो अर्थ ही किसी के नाम, रूप, धाम, गुण, कर्म, स्वभाव, सम्बन्ध, उससे होने वाली प्राप्ति इत्यादि का परिचय है। अतः परमात्मा को सर्वव्यापक मानने के कारण आज मनुष्य 'मन्मनाभव' तथा 'मामेकं शरणं व्रज' की ईश्वराज्ञा पर नहीं चल सकते अर्थात् बुद्धि में एक ज्योति स्वरूप परमपिता परमात्मा शिव की याद धारण नहीं कर सकते और उससे स्नेह सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते बल्कि उनका मन भटकता रहता है। परमात्मा तो चैतन्य है, वह तो हमारे परमपिता है, पिता तो कभी सर्वव्यापी होता नहीं ! अतः परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापी मानने से ही सभी नर-नारी योग-भ्रष्ट और पतित हो गये हैं और उस परमपिता की पवित्रता-सुख-शान्ति रूपी बपौती (विरासत) से वंचित हो दुःखी तथा अशान्त हैं।

अतः स्पष्ट है कि भक्तों का यह जो कथन है कि - 'परमात्मा तो घट-घट का वासी है', इसका भी शब्दार्थ लेना ठीक नहीं है। वास्तव में 'घट' अथवा 'हृदय' को प्रेम एवं याद का स्थान माना गया है। द्वापर युग के शुरू के लोगों में ईश्वर-भक्ति अथवा प्रभु में आस्था एवं श्रद्धा बहुत थी। कोई विरला ही ऐसा व्यक्ति होता था जो परमात्मा को न मानता हो। अतः उस समय भाव-विभोर भक्त यह कह दिया करते थे कि ईश्वर तो घट-घट वासी हैं अर्थात् उसे तो सभी याद और प्यार करते हैं और सभी के मन में ईश्वर का चित्र बस रहा है। इन शब्दों का अर्थ यह लेना कि स्वयं ईश्वर ही सबके हृदयों में बस रहा है, भूल है।

सृष्टि रूपी उल्टा व अद्भुत वृक्ष और उसके बीजरूप परमात्मा

भगवान ने इस सृष्टि रूपी वृक्ष की तुलना एक उल्टे वृक्ष से की है क्योंकि अन्य वृक्षों के बीज तो पृथ्वी के अन्दर बोये जाते हैं और वृक्ष ऊपर को उगते हैं परन्तु मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष के जो अविनाशी और चेतन बीज स्वरूप परमपिता परमात्मा शिव है, वह स्वयं ऊपर परमधाम अथवा ब्रह्मलोक में निवास करते हैं।

चित्र में सबसे नीचे कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ का संगम दिखलाया गया है। वहां श्वेत-वस्त्रधारी प्रजापिता ब्रह्मा, जगदम्बा सरस्वती तथा कुछ ब्राह्मणियां और ब्राह्मण सहज राजयोग की स्थिति में बैठे हैं। इस चित्र द्वारा यह रहस्य प्रकट किया गया है कि कलियुग के अन्त में अज्ञान रूपी रात्रि के समय, सृष्टि के बीजरूप, कल्याणकारी, ज्ञान-सागर परमपिता परमात्मा शिव नई, पवित्र सृष्टि रचने के संकल्प से प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित (प्रविष्ट) हुए और उन्होंने प्रजापिता ब्रह्मा के कमल-मुख द्वारा मूल गीता-ज्ञान तथा सहज राजयोग की शिक्षा दी, जिसे धारण करने वाले नर-नारी 'पवित्र ब्राह्मण' कहलाये। ये ब्राह्मण और ब्राह्मणियां – सरस्वती इत्यादि – जिन्हें ही 'शिव-शक्तियाँ' भी कहा जाता है, प्रजापिता ब्रह्मा के मुख से (ज्ञान द्वारा) उत्पन्न हुए। इस छोटे से युग को 'संगम युग' कहा जाता है। वह युग सृष्टि का 'धर्माऊयुग' (Leap yuga) भी कहलाता है और इसे ही 'पुरुषोत्तम युग', अथवा 'गीता युग' (Gita Epoch) भी कहा जा सकता है।

सतयुग में श्रीलक्ष्मी और श्रीनारायण का अटल, अखण्ड, निर्विघ्न और अति सुखकारी राज्य था। प्रसिद्ध है कि उस समय दूध और घी की नदियां बहती थीं तथा शेर और गाय भी एक घाट पर पानी पीते थे। उस समय का भारत डबल सिरताज (Double crowned) था। सभी सदा स्वस्थ (Ever healthy), सदा-धनवान् (Ever wealthy) और सदा सुखी (Ever happy) थे। उस समय काम-क्रोधादि विकारों की लड़ाई अथवा हिंसा का तथा अशान्ति एवं दुःखों का नाम-निशान भी नहीं था। उस समय के भारत को 'स्वर्ग', 'वैकुण्ठ', 'बहिश्त', 'सुखधाम' अथवा 'हैवनली एबोड' (Heavenly Abode) कहा है। उस समय सभी जीवन्मुक्त और पूज्य थे और उनकी औसत आयु लगभग १५० वर्ष थी। उस युग के लोगों को 'देवता वर्ण' कहा जाता है। पूज्य विश्व-महारानी श्री लक्ष्मी तथा पूज्य विश्व-महाराजन् श्री नारायण के सूर्य वंश में कुल ८ सूर्यवंशी महारानी तथा महाराजा हुए जिन्होंने कि १२५० वर्षों तक चक्रवर्ती राज्य किया।

त्रेता युग में श्रीसीता और श्रीराम चन्द्रवंशी, १४ कला गुणवान् और सम्पूर्ण निर्विकारी थे। उनके राज्य की भी भारत में बहुत महिमा है। सतयुग और त्रेतायुग का 'आदि सनातन देवी-देवता धर्म-वंश' ही इस मनुष्य-सृष्टि रूपी वृक्ष का तना और मूल है जिससे ही बाद में अनेक धर्म रूपी शाखाएं निकलीं। द्वापर में देह-अभिमान तथा काम क्रोधादि विकारों का प्रादुर्भाव हुआ। दैवी स्वभाव का स्थान आसुरी स्वभाव ने लेना शुरू किया। सृष्टि में दुःख और अशान्ति का भी राज्य शुरू हुआ। उनसे बचने के लिए मनुष्य ने पूजा तथा भक्ति भी शुरू की। ऋषि लोग शास्त्रों की रचना करने लगे। यज्ञ, तप आदि की शुरुआत हुई।

कलियुग में लोग परमात्मा शिव की तथा देवताओं की पूजा के अतिरिक्त सूर्य की, पीपल के वृक्ष की, अग्नि की तथा अन्यान्य जड़ तत्वों की भी पूजा करने लगे और बिल्कुल देह-अभिमानी, विकारी और पतित बन गए। उनका आहार-व्यवहार, दृष्टि वृत्ति, मन, वचन और कर्म तमोगुणी और विकाराधीन हो गया।

कलियुग के अन्त में सभी मनुष्य तमोप्रधान और आसुरी लक्षणों वाले होते हैं। अतः सतयुग और त्रेतायुग की सतोगुणी, दैवी सृष्टि स्वर्ग (वैकुण्ठ) और उसकी तुलना में द्वापरयुग तथा कलियुग की सृष्टि ही 'नरक' है।

सृष्टि रुपी उल्टा व अद्भुत वृक्ष और उसके बीजरुप परमात्मा

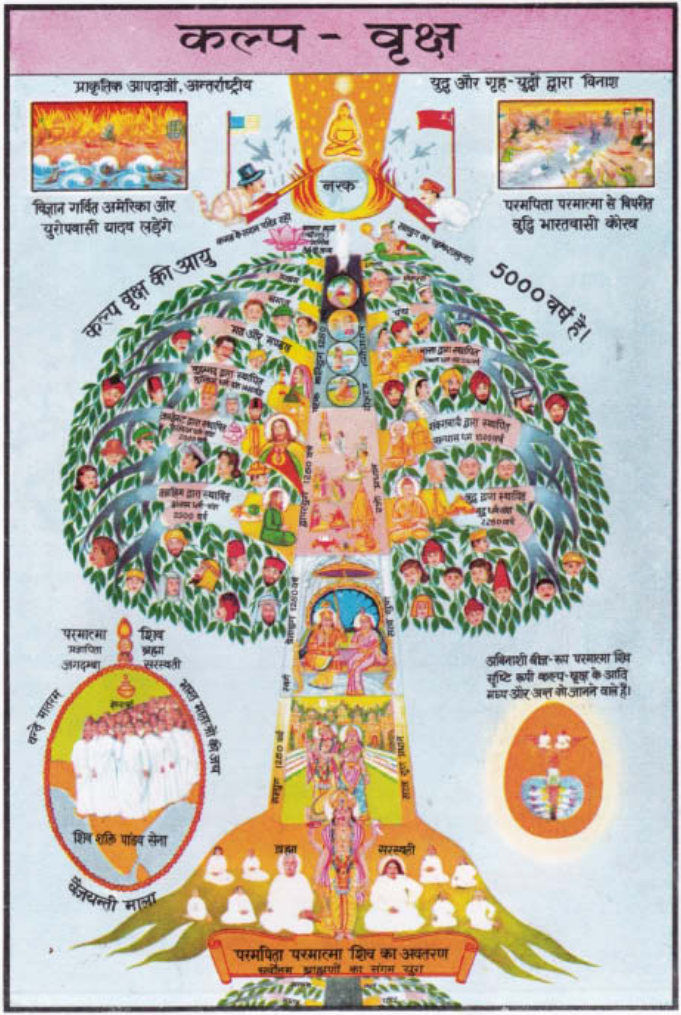

प्रभु-मिलन का गुप्त युग – पुरुषोत्तम संगम युग

प्रभु मिलन का गुप्त युग – पुरुषोत्तम संगम युग

भारत में आदि सनातन धर्म के लोग जैसे अन्य त्योहारों, पर्वों इत्यादि को बड़ी श्रद्धा से मानते हैं, वैसे ही पुरुषोत्तम मास को भी मानते हैं। इस मास में लोग तीर्थ यात्रा का विशेष महात्म्य मानते हैं और बहुत दान-पुण्य भी करते हैं तथा आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा में भी काफी समय देते हैं। वे प्रात: अमृतवेले ही गंगा-स्नान करने में बहुत पुण्य समझते हैं।

वास्तव में 'पुरुषोत्तम' शब्द परमपिता परमात्मा ही का वाचक है। जैसे 'आत्मा' को 'पुरुष' भी कहा जाता है, वैसे ही परमात्मा के लिए 'परम-पुरुष' अथवा 'पुरुषोत्तम' शब्द का प्रयोग होता है क्योंकि वह सभी पुरुषों (आत्माओं) से ज्ञान, शान्ति, पवित्रता और शक्ति में उत्तम हैं। 'पुरुषोत्तम मास' कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ के संगम युग की याद दिलाता है क्योंकि इस युग में पुरुषोत्तम (परमपिता) परमात्मा का अवतरण होता है। सतयुग के आरम्भ से लेकर कलियुग के अन्त तक तो मनुष्यात्माओं का जन्म-पुनर्जन्म होता ही रहता है परन्तु कलियुग के अन्त में सतयुग और सतधर्म की तथा उत्तम मर्यादा की पुन: स्थापना करने के लिए पुरुषोत्तम (परमात्मा) को आना पड़ता है। इस 'संगमयुग' में परमपिता परमात्मा मनुष्यात्माओं को ज्ञान और सहज राजयोग सिखाकर वापिस परमधाम अथवा ब्रह्मलोक में ले जाते हैं और अन्य मनुष्यात्माओं को सृष्टि के महाविनाश के द्वारा अशरीरी करके मुक्तिधाम ले जाते हैं। इस प्रकार सभी मनुष्यात्माएँ शिवपुरी अथवा विष्णुपुरी की अव्यक्ति एवं आध्यात्मिक यात्रा करती हैं और ज्ञानचर्चा अथवा ज्ञान-गंगा में स्नान करके पावन बनती हैं। परन्तु आज लोग इन रहस्यों को न जानने के कारण गंगा नदी में स्नान करते हैं और शिव तथा विष्णु की स्थूल यादगारों की यात्रा करते हैं। वास्तव में 'पुरुषोत्तम मास' में जिस दान का महत्व है, वह दान पाँच विकारों का दान है। परमपिता परमात्मा जब पुरुषोत्तम युग में अवतरित होते हैं तो मनुष्य आत्माओं को बुराइयों अथवा विकारों का दान देने की शिक्षा देते हैं। इस प्रकार, वे काम-क्रोधादि विकारों को त्यागकर उत्तम मर्यादा वाले बन जाते हैं और उसके बाद सतयुग, देवयुग का आरम्भ हो जाता है। आज यदि इन रहस्यों को जानकर मनुष्य विकारों का दान दें, ज्ञान-गंगा में नित्य स्नान करें और योग द्वारा देह से न्यारा होकर सच्ची आध्यात्मिक यात्रा करें तो विश्व में पुन: सुख, शान्ति सम्पन्न राम-राज्य (स्वर्ग) की स्थापना हो जायेगी और नर तथा नारी नर्क से निकल स्वर्ग में पहुँच जाएँगे। चित्र में भी इसी रहस्य को प्रदर्शित किया गया है।

यहाँ संगम युग में श्वेत वस्त्रधारी प्रजापिता ब्रह्मा, जगदम्बा सरस्वती तथा कुछेक मुखवंशी ब्राह्मणों और ब्राह्मणियों को परमपिता परमात्मा शिव से योग लगाते दिखाया गया है। इस राजयोग द्वारा ही मन का मैल धुलता है, पिछले विकर्म दग्ध होते हैं और संस्कार सतोप्रधान बनते हैं। अत: नीचे की ओर नरक के व्यक्ति ज्ञान एवं योग-अग्नि प्रज्जवलित करके, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को इस सूक्ष्म अग्नि में स्वाहा करते दिखाये गये हैं। इसी के फलस्वरूप, वे नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी बनकर अर्थात् 'मनुष्य से देवता' पद का अधिकार पाकर सुब्रधाम-वैकुण्ठ अथवा स्वर्ग में पवित्र एवं सम्पूर्ण सुख-शान्ति सम्पन्न स्वराज्य के अधिकारी बने हैं।

मालूम रहे कि वर्तमान समय यह संगम युग ही चल रहा है। अब यह कलियुगी सृष्टि नरक अर्थात् दु:ख धाम है; अब निकट भविष्य में सतयुग आने वाला है जबकि यही सृष्टि सुखधाम होगी। अत: अब हमें पवित्र एवं योगी बनना चाहिए।

मनुष्य के ८४ जन्मों की अद्भुत कहानी

मनुष्यात्मा सारे कल्प में अधिक से अधिक कुल ८४ जन्म लेती है; वह ८४ लाख योनियों में पुनर्जन्म नहीं लेती। मनुष्यात्माओं के ८४ जन्मों के चक्र को ही यहाँ ८४ सीढ़ियों के रूप में चित्रित किया गया है। चूँकि प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती मनुष्य-समाज के आदि-पिता और आदि-माता हैं, इसलिए उनके ८४ जन्मों का संक्षिप्त उल्लेख करने से अन्य मनुष्यात्माओं का भी उनके अन्तर्गत आ जायेगा। हम यह तो बता आये हैं कि ब्रह्मा और सरस्वती संगम युग में परमपिता शिव के ज्ञान और योग द्वारा सतयुग के आरम्भ में श्री नारायण और श्री लक्ष्मी पद पाते हैं।

सतयुग और त्रेतायुग में २१ जन्म पूज्य देव पद : अब चित्र में दिखलाया गया है कि सतयुग के १२५० वर्षों में श्रीलक्ष्मी, श्रीनारायण १०० प्रतिशत सुख-शान्ति-सम्पन्न ८ जन्म लेते हैं। इसलिए भारत में ८ की संख्या शुभ मानी गई है और कई लोग केवल ८ मणकों की माला सिमरते हैं तथा अष्ट देवताओं का पूजन भी करते हैं। पूज्य स्थिति वाले इन ८ नारायणी जन्मों को यहां ८ सीढ़ियों के रूप में चित्रित किया गया है। फिर त्रेतायुग के १२५० वर्षों में वे १४ कला सम्पूर्ण सीता और रामचन्द्र के वंश में पूज्य राजा-रानी अथवा उच्च प्रजा के रूप में कुल १२ जन्म लेते हैं। इस प्रकार सतयुग और त्रेतायुग के कुल २५०० वर्षों में वे सम्पूर्ण पवित्रता, सुख, शान्ति और स्वास्थ्य सम्पन्न २१ दैवी जन्म लेते हैं। इसलिए ही प्रसिद्ध है कि ज्ञान द्वारा मनुष्य के २१ जन्म अथवा २१ पीढ़ियाँ सुधर जाती हैं अथवा मनुष्य २१ पीढ़ियों के लिए तर जाता है।

द्वापर और कलियुग में कुल ६३ जन्म जीवन-बद्ध : फिर सुख की प्रारब्ध समाप्त होने के बाद, वे द्वापरयुग के आरम्भ में पुजारी स्थिति को प्राप्त होते हैं। सबसे पहले तो निराकार परमपिता परमात्मा शिव की हीरे की प्रतिमा बनाकर अनन्य भावना से उसकी पूजा करते हैं। यहाँ चित्र में उन्हें एक पुजारी राजा के रूप में शिव-पूजा करते दिखाया गया है। धीरे-धीरे वे सूक्ष्म देवताओं, अर्थात् विष्णु तथा शंकर की भी पूजा शुरू करते हैं और बाद में अज्ञानता तथा आत्म-विस्मृति के कारण वे अपने ही पहले वाले श्री नारायण तथा श्री लक्ष्मी रूप की भी पूजा शुरू कर देते हैं। इसलिए, कहावत प्रसिद्ध है कि "जो स्वयं कभी पूज्य थे, बाद में वे अपने-आप ही के पुजारी बन गए।" श्री लक्ष्मी और श्री नारायण की आत्माओं ने द्वापर युग के १२५० वर्षों में ऐसी पुजारी स्थिति में भिन्न-भिन्न नाम-रूप से, वैश्य-वंशी भक्त-शिरोमणि राजा, रानी अथवा सुखी प्रजा के रूप में कुल २१ जन्म लिए।

इसके बाद कलियुग का आरम्भ हुआ। अब तो सूक्ष्म लोक तथा साकार लोक के देवी-देवताओं की पूजा इत्यादि के अतिरिक्त तत्व पूजा भी शुरू हो गई। इस प्रकार, भक्ति भी व्यभिचारी हो गई। यह अवस्था सृष्टि की तमोप्रधान अथवा शूद्र अवस्था थी। इस काल में काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार उग्र रूप-धारण करते गए। कलियुग के अन्त में उन्होंने तथा उनके वंश के दूसरे लोगों ने कुल ४२ जन्म लिए।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि कुल ५००० वर्षों में उनकी आत्मा पूज्य और पुजारी अवस्था में कुल ८४ जन्म लेती है। अब वह पुरानी, पतित दुनिया में ८३ जन्म ले चुकी है। अब उनके अन्तिम अर्थात् ८४वें जन्म की वानप्रस्थ अवस्था में, परमपिता परमात्मा शिव ने उनका नाम "प्रजापिता ब्रह्मा" तथा उनकी मुख-वंशी कन्या का नाम "जगदम्बा सरस्वती" रखा है। इस प्रकार, देवता-वंश की अन्य आत्माएँ भी ५००० वर्ष में अधिकाधिक ८४ जन्म लेती हैं। इसलिए भारत में जन्म-मरण के चक्र को "चौरासी का चक्कर" भी कहते हैं और कई देवियों के मन्दिरों में ८४ घंटे भी लगे होते हैं तथा उन्हें "८४ घंटे वाली देवी" नाम से लोग याद करते हैं।

मनुष्य के 84 जन्मों की अद्भुत कहानी

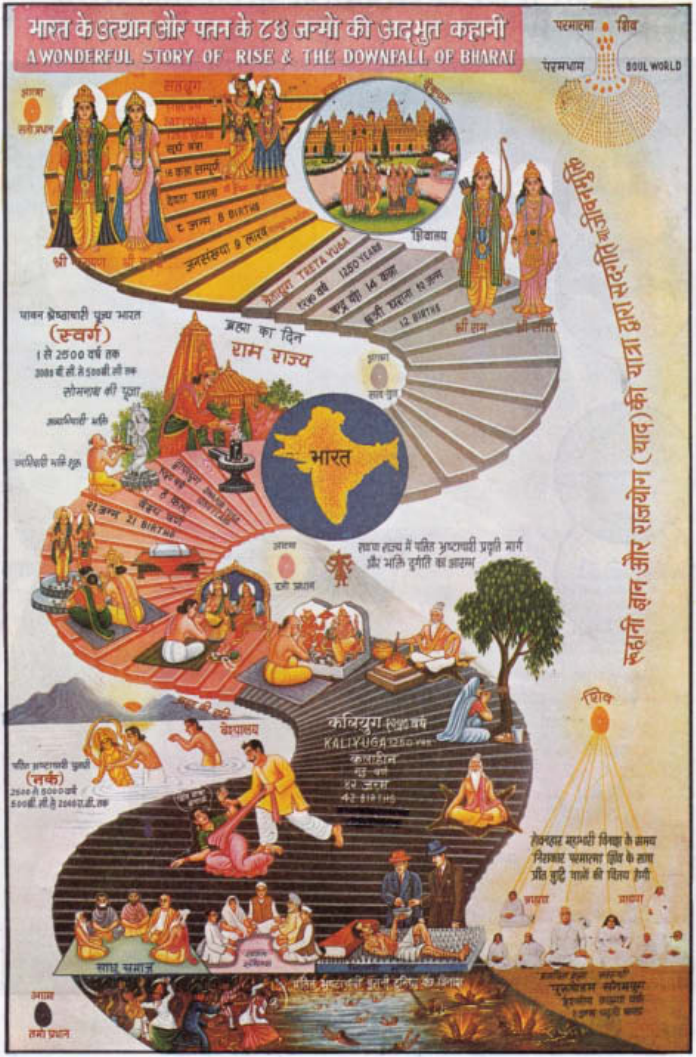

मनुष्यात्मा 84 लाख योनियाँ धारण नहीं करती

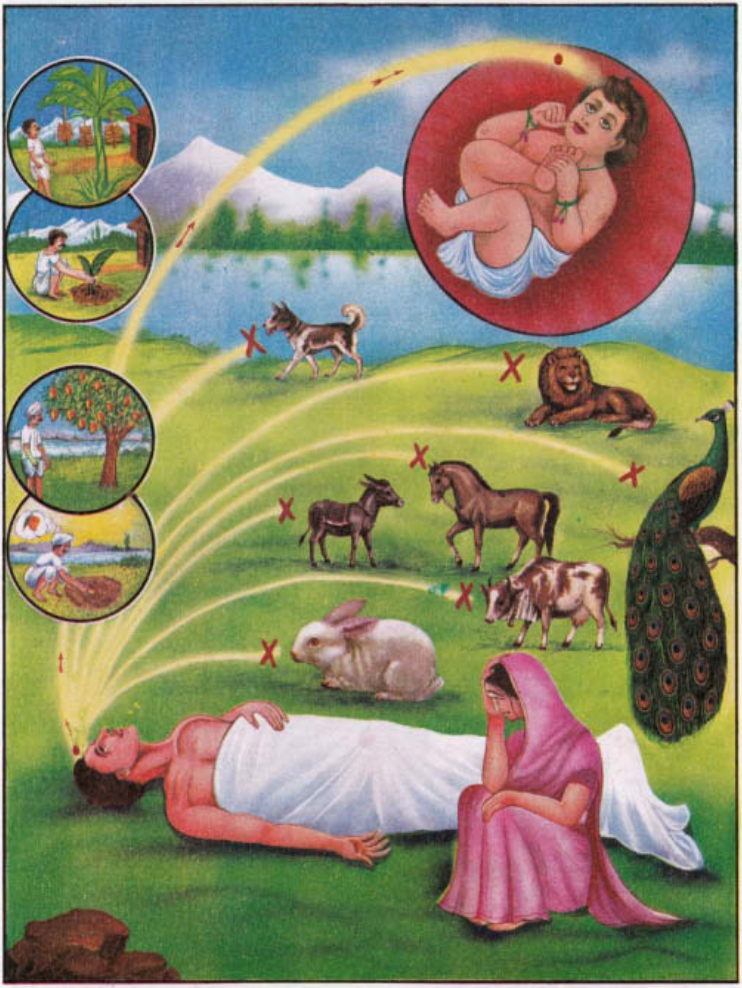

मनुष्यात्मा ८४ लाख योनियां धारण नहीं करती

परमप्रिय परमपिता परमात्मा शिव ने वर्तमान समय जैसे हमें ईश्वरीय ज्ञान के अन्य अनेक मधुर रहस्य समझाए हैं, वैसे ही यह भी एक नई बात समझाई है कि वास्तव में मनुष्यात्माएं पाशविक योनियों में जन्म नहीं लेतीं। यह हमारे लिए बहुत ही खुशी की बात है। परन्तु फिर भी कई ऐसे लोग हैं जो यह कहते कि मनुष्यात्माएं पशु-पक्षी इत्यादि ८४ लाख योनियों में जन्म-पुनर्जन्म लेती हैं।

वे कहते हैं कि - "जैसे किसी देश की सरकार अपराधी को दण्ड देने के लिये उसकी स्वतन्त्रता को छीन लेती है और उसे एक कोठरी में बन्द कर देती है और उसे सुख-सुविधा से कुछ काल के लिये वंचित कर देती है, वैसे ही यदि मनुष्य कोई बुरे कर्म करता है तो उसे उसके दण्ड के रूप में पशु-पक्षी इत्यादि भोग-योनियों में दुःख तथा परतन्त्रता भोगनी पड़ती है"।

परन्तु अब परमप्रिय परमपिता परमात्मा शिव ने समझाया है कि मनुष्यात्माएँ अपने बुरे कर्मों का दण्ड मनुष्य-योनि में ही भोगती हैं। परमात्मा कहते हैं कि मनुष्य बुरे गुण-कर्म-स्वभाव के कारण पशु से भी अधिक बुरा तो बन ही जाता है और पशु-पक्षी से अधिक दुःखी भी होता है, परन्तु वह पशु-पक्षी इत्यादि योनियों में जन्म नहीं लेता। यह तो हम देखते या सुनते भी हैं कि मनुष्य गूंगे, अन्धे, बहरे, लंगड़े, कोढ़ी चिर-रोगी तथा कंगाल होते हैं, यह भी हम देखते हैं कि कई पशु भी मनुष्यों से अधिक स्वतन्त्र तथा सुखी होते हैं, उन्हें डबलरोटी और मक्खन खिलाया जाता है, सोफे (Sofa) पर सुलाया जाता है, मोटर-कार में यात्रा कराई जाती है और बहुत ही प्यार तथा प्रेम से पाला जाता है परन्तु ऐसे कितने ही मनुष्य संसार में हैं जो भूखे और अर्द्धनग्न जीवन व्यतीत करते हैं और जब वे पैसा या दो पैसे मांगने के लिए मनुष्यों के आगे हाथ फैलाते हैं तो अन्य मनुष्य उन्हें अपमानित करते हैं। कितने ही मनुष्य हैं जो सर्दी में ठिठुर कर, अथवा रोगियों की हालत में सड़क की पटरियों पर कुत्ते से भी बुरी मौत मर जाते हैं और कितने ही मनुष्य तो अत्यन्त वेदना और दुःख के वश अपने ही हाथों अपने आपको मार डालते हैं। अतः जब हम स्पष्ट देखते हैं कि मनुष्य-योनि भी भोगी-योनि है और कि मनुष्य-योनि में मनुष्य पशुओं से अधिक दुखी हो सकता है तो यह क्यों माना जाए कि मनुष्यात्मा को पशु-पक्षी इत्यादि योनियों में जन्म लेना पड़ता है?

जैसा बीज वैसा वृक्ष: इसके अतिरिक्त, हर एक मनुष्यात्मा में अपने जन्म-जन्मान्तर का पार्ट अनादि काल से अव्यक्त रूप में भरा हुआ है और, इसलिये, मनुष्यात्माएँ अनादि काल से परस्पर भिन्न-भिन्न गुण-कर्म-स्वभाव-प्रभाव और प्रारब्ध वाली हैं। मनुष्यात्माओं के गुण, कर्म, स्वभाव तथा पार्ट (Part) अन्य योनियों की आत्माओं के गुण, कर्म, स्वभाव से अनादिकाल से भिन्न हैं। अतः जैसे आम की गुठली से मिर्च पैदा नहीं हो सकती बल्कि "जैसा बीज वैसा ही वृक्ष होता है", ठीक वैसे ही मनुष्यात्माओं की तो श्रेणी ही अलग है। मनुष्यात्माएँ पशु-पक्षी आदि ८४ लाख योनियों में जन्म नहीं लेतीं। बल्कि, मनुष्यात्माएं सारे कल्प में मनुष्य-योनि में ही अधिक-से-अधिक ८४ जन्म, पुनर्जन्म लेकर अपने-अपने कर्मों के अनुरूप सुख-दुःख भोगती हैं।

यदि मनुष्यात्मा पशु योनि में पुनर्जन्म लेती तो मनुष्य गणना बढ़ती न जाती: आप स्वयं ही सोचिए कि यदि बुरे कर्मों के कारण मनुष्यात्मा का पुनर्जन्म पशु-योनि में होता, तब तो हर वर्ष मनुष्य-गणना बढ़ती न जाती, बल्कि घटती जाती क्योंकि आज सभी के कर्म, विकारों के कारण विकर्म बन रहे हैं। परन्तु आप देखते हैं कि फिर भी मनुष्य-गणना बढ़ती ही जाती है, क्योंकि मनुष्य पशु-पक्षी या कीट-पतंग आदि योनियों में पुनर्जन्म नहीं ले रहे हैं।

ईश्वरीय विश्व विद्यालय

(प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय का मुख्य स्थान, आबू पर्वत)

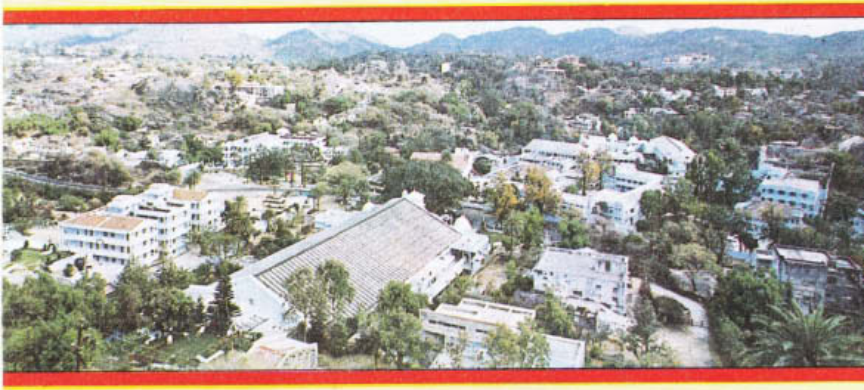

इस पथ-प्रदर्शनी में जो ईश्वरीय ज्ञान, व सहज राजयोग लिपि-बद्ध किया गया है, उसकी विस्तारपूर्वक शिक्षा प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय में दी जाती है। ऊपर जो चित्र अंकित किया गया है, वह उसके मुख्य शिक्षा-स्थान तथा मुख्य कार्यालय का है। इस ईश्वरीय विश्व-विद्यालय की स्थापना परमप्रिय परमपिता परमात्मा ज्योति-बिन्दु शिव ने १९३७ में सिन्ध में की थी। परमपिता परमात्मा शिव परमधाम अर्थात् ब्रह्मलोक से अवतरित होकर एक साधारण एवं वृद्ध मनुष्य के तन में प्रविष्ट हुए थे क्योंकि किसी मानवीय मुख का प्रयोग किए बिना निराकार परमात्मा अन्य किस रीति से ज्ञान देते?

ज्ञान एवं सहज राजयोग के द्वारा सतयुग की स्थापनार्थ ज्योति-बिन्दु शिव का जिस मनुष्य के तन में 'दिव्य प्रवेश' अथवा दिव्य जन्म हुआ, उस मनुष्य को उन्होंने **'प्रजापिता ब्रह्मा'** – यह अलौकिक नाम दिया। उनके मुखार्विन्द द्वारा ज्ञान एवं योग की शिक्षा लेकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले तथा पूर्ण पवित्रता का व्रत लेने वाले नर और नारियों को क्रमश: मुख-वंशी 'ब्राह्मण' तथा 'ब्राह्मणियां' अथवा **'ब्रह्माकुमार'** और **'ब्रह्माकुमारियां'** कहा जाता है क्योंकि उनका आध्यात्मिक नव-जीवन ब्रह्मा के श्रीमुख द्वारा विनिसृत ज्ञान से हुआ।

परमपिता शिव तो त्रिकालदर्शी हैं; वे तो उनके जन्म-जन्मान्तर की जीवन कहानी को जानते थे कि यह ही सतयुग के आरम्भ में पूज्य श्री नारायण थे और समयान्तर में कलाएं कम होते-होते अब इस अवस्था को प्राप्त हुए थे। अत: इनके तन में प्रविष्ट होकर उन्होंने सन् १९३७ में इस अविनाशी ज्ञान-यज्ञ की अथवा ईश्वरीय विश्व-विद्यालय की ५००० वर्ष पहले की भांति, पुर्नस्थापना की। इन्हीं प्रजापिता ब्रह्मा को ही महाभारत की भाषा में **'भगवान का रथ'** भी कहा जा सकता है, ज्ञान-गंगा लाने के निमित्त बनने वाले **'भागीरथ'** भी और **'शिव'** वाहन **'नन्दीगण'** भी।

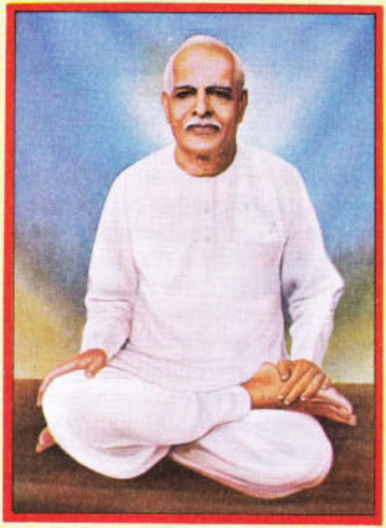

पिता श्री ब्रह्मा
(जिनके माध्यम से परमपिता शिव ने ज्ञान दिया)

जगदम्बा सरस्वती
(जिन्होंने ज्ञान-वीणा द्वारा आत्मिक जागृति लाई)

जिस मनुष्य के तन में परमात्मा शिव ने प्रवेश किया, वह उस समय कलकत्ता में एक विख्यात जौहरी थे और श्री नारायण के अनन्य भक्त थे। उनमें उदारता, सर्व के कल्याण की भावना, व्यवहार-कुशलता, राजकुलोचित शालीनता और प्रभु मिलन की उत्कट चाह थी। उनके सम्बन्ध राजाओं-महाराजाओं से भी थे, समाज के मुखियों से भी और साधारण एवं निम्न वर्ग से भी खूब परिचित थे। अत: वे अनुभवी भी थे और उन दिनों उनमें भक्ति की पराकाष्ठा तथा वैराग्य की अनुकूल भूमिका भी थी।

अन्यश्च प्रवृत्ति को दिव्य बनाने के लिए माध्यम भी प्रवृत्ति मार्ग वाले ही व्यक्ति का होना उचित था। इन तथा अन्य अनेकानेक कारणों से **त्रिकालदर्शी परमपिता शिव** ने उनके तन में प्रवेश किया।

उनके मुख द्वारा ज्ञान एवं योग की शिक्षा लेने वाले सभी ब्रह्माकुमारों एवं ब्रह्माकुमारियों में जो श्रेष्ठ थीं, उनका इस अलौकिक जीवन का नाम हुआ — जगदम्बा सरस्वती। वह 'यज्ञ-माता' हुईं। उन्होंने ज्ञान-वीणा द्वारा जन-जन को प्रभु-परिचय देकर उनमें आध्यात्मिक जागृति लाई। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया और सहज राजयोग द्वारा अनेक मनुष्यात्माओं की ज्योति जगाई। प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती ने पवित्र एवं दैवी जीवन का आदर्श उपस्थित किया।

सृष्टि-नाटक का रचयिता और निर्देशक कौन है?

यह मनुष्य-सृष्टि प्रकृति-पुरुष का एक अनादि खेल है। इसकी कहानी को जानकर मनुष्यात्मा बहुत ही आनन्द प्राप्त कर सकती है।

सृष्टि रूपी नाटक के चार पट: सामने दिये गए चित्र में दिखाया गया है कि स्वस्तिक सृष्टि-चक्र को चार बराबर भागों में बांटता है— सतयुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग।

सृष्टि-नाटक में हर एक आत्मा एक निश्चित समय पर परमधाम से इस सृष्टि रूपी नाटक के मंच पर आती है। सबसे पहले सतयुग और त्रेता-युग के सुन्दर दृश्य सामने आते हैं और इन दो युगों की सुखपूर्ण सृष्टि में पृथ्वी-मंच पर एक 'आदि सनातन देवी-देवता धर्म-वंश' की ही मनुष्यात्माओं का पार्ट होता है और अन्य सभी धर्म-वंशों की आत्माएँ परमधाम में होती हैं। अत: इन दो युगों में केवल इन्हीं दो वंशों की ही मनुष्यात्माएँ अपनी-अपनी पवित्रता की स्टेज के अनुसार नम्बर वार आती हैं। इसलिए, इन दो युगों में सभी अद्वैत और निर्वैर स्वभाव वाले होते हैं।

द्वापर युग में इसी धर्म की रजोगुणी अवस्था हो जाने से इब्राहिम द्वारा इस्लाम धर्म-वंश की, बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म-वंश की और ईसा द्वारा ईसाई धर्म की स्थापना होती है। अत: इन चार मुख्य धर्म-वंशों के पिता ही संसार के मुख्य एक्टर्स (Principal actors) हैं और इन चार धर्मों के शास्त्र ही मुख्य शास्त्र हैं। इनके अतिरिक्त, संन्यास धर्म के स्थापक शंकराचार्य, मुसलमान (मुहम्मदी) धर्म-वंश के स्थापक मुहम्मद तथा सिक्ख धर्म के संस्थापक नानक भी इस विश्व नाटक के मुख्य एक्टरों में से हैं। परन्तु फिर भी मुख्य रूप में पहले बताये-गए चार धर्मों पर ही यह सारा विश्व-नाटक आधारित है। इन अनेक मत-मतान्तरों के कारण द्वापर युग तथा कलियुग की सृष्टि में द्वैत, लड़ाई-झगड़ा तथा दु:ख होता है।

कलियुग के अन्त में, जब धर्म की अति ग्लानि हो जाती है, अर्थात् विश्व का सबसे पहला 'आदि सनातन देवी-देवता धर्म' बहुत क्षीण हो जाता है और मनुष्य अत्यन्त पतित हो जाते हैं, तब इस सृष्टि-नाटक के रचयिता तथा निर्देशक (Creator-Director) परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा के तन में स्वयं अवतरित होते हैं। वे प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा मुख-वंशी कन्या – 'ब्रह्माकुमारी सरस्वती' तथा अन्य ब्राह्मणों व ब्राह्मणियों को रचते हैं और उन द्वारा पुन: सभी को अलौकिक माता-पिता के रूप में मिलते हैं तथा ज्ञान द्वारा उनकी मार्ग-प्रदर्शना करते हैं और उन्हें मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार देते हैं। अत: प्रजापिता ब्रह्मा तथा जगदम्बा सरस्वती, जिन्हें ही 'ऐडम' तथा 'ईव' अथवा 'आदम और 'हव्वा' भी कहा जाता है इस सृष्टि नाटक के नायक और नायिका हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा स्वयं परमपिता परमात्मा शिव पृथ्वी पर स्वर्ग स्थापन करते हैं। कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ का यह छोटा-सा संगम, अर्थात् संगम युग, जब परमात्मा अवतरित होते हैं, बहुत ही महत्वपूर्ण है।

विश्व के इतिहास और भूगोल की पुनरावृत्ति: चित्र में यह भी दिखाया गया है कि कलियुग के अन्त में परमपिता परमात्मा शिव जब महादेव शंकर के द्वारा सृष्टि का महाविनाश कराते हैं तब लगभग सभी आत्मा रूपी एक्टर अपने प्यारे देश, अर्थात् मुक्तिधाम को वापस लौट जाते हैं और फिर सतयुग के आरम्भ से 'आदि सनातन देवी-देवता' धर्म की मुख्य मनुष्यात्माएँ इस सृष्टि-मंच पर आना शुरू कर देती हैं। फिर २५०० वर्षों के बाद, द्वापर युग के प्रारम्भ से इब्राहिम के इस्लाम घराने की आत्माएं, फिर बौद्ध धर्मवंश की आत्माएँ, फिर ईसाई धर्म-वंश की आत्माएँ अपने-अपने समय पर सृष्टि-मंच पर फिर आकर अपना-अपना अनादि-निश्चित पार्ट बजाते हैं और अपनी स्वर्णिम, रजत, ताम्र और लोह, चारों अवस्थाओं को पार करती हैं। इस प्रकार, यह अनादि-निश्चित सृष्टि-नाटक अनादि काल से हर ५००० वर्ष के बाद हुबहू पुनरावृत्त होता ही रहता है।

सृष्टि-नाटक का रचयिता और निर्देशक कौन है?

कलियुग अभी बच्चा नहीं है बल्कि बूढ़ा हो गया है

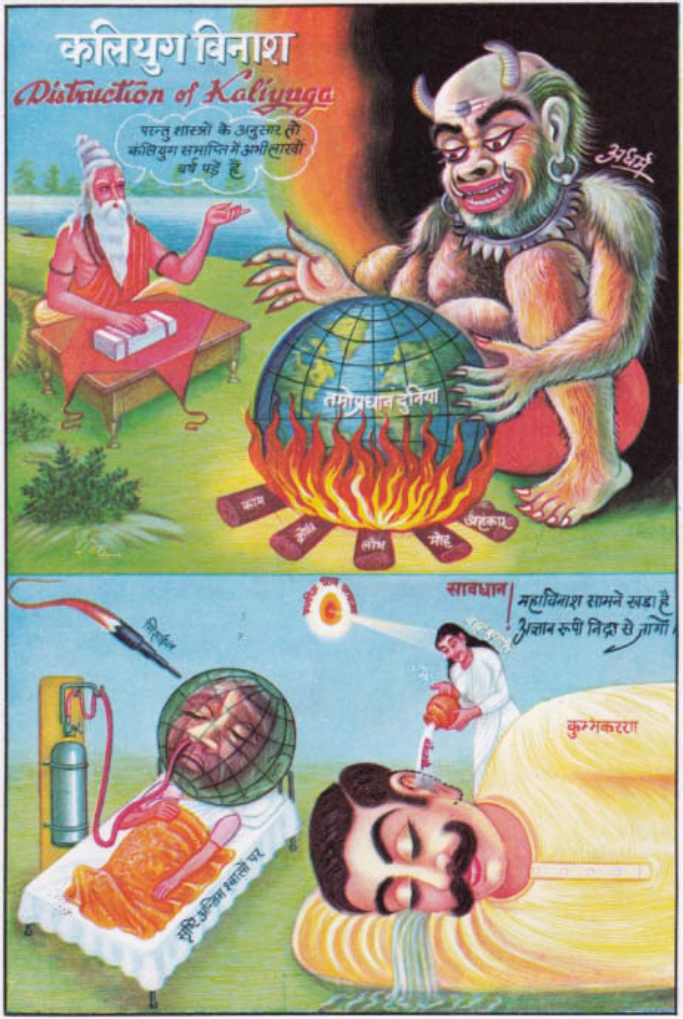

कलियुग अभी बच्चा नहीं है बल्कि बूढ़ा हो गया है

इसका विनाश निकट है और शीघ्र ही सतयुग आने वाला है !

आज बहुत से लोग कहते हैं, "कलियुग अभी बच्चा है । अभी तो इसके लाखों वर्ष और रहते हैं । शास्त्रों के अनुसार अभी तो सृष्टि के महाविनाश में बहुत काल रहता है ।"

परन्तु अब परमपिता परमात्मा कहते हैं कि अब तो कलियुग बूढ़ा हो चुका है । अब तो सृष्टि के महाविनाश की घड़ी निकट आ पहुंची है । अब सभी देख भी रहे हैं कि यह मनुष्य-सृष्टि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार की चिता पर जल रही है । सृष्टि के महाविनाश के लिए एटम बम, हाईड्रोजन बम तथा मूसल भी बन चुके हैं । अत: अब भी यदि कोई कहता है कि महाविनाश दूर है, तो वह घोर अज्ञान में है और कुम्भकरणी निद्रा में सोया हुआ है, वह अपना अकल्याण कर रहा है । अब जब कि परमपिता परमात्मा शिव अवतरित होकर ज्ञानामृत पिला रहे हैं, तो वे लोग उससे वंचित हैं ।

आज तो वैज्ञानिक एवं विद्याओं के विशेषज्ञ भी कहते हैं कि जनसंख्या जिस तीव्र गति से बढ़ रही है, अन्न की उपज इस अनुपात से नहीं बढ़ रही है । इसलिए वे अत्यन्त भयंकर अकाल के परिणामस्वरूप महाविनाश की घोषणा करते हैं । पुनश्च, वातावरण प्रदूषण तथा पेट्रोल, कोयला इत्यादि शक्ति स्रोतों के कुछ वर्षों में खत्म हो जाने की घोषणा भी वैज्ञानिक कर रहे हैं । अन्य लोग पृथ्वी के ठण्डे होते जाने के कारण हिम-पात की बात बता रहे हैं । आज केवल रूस और अमेरिका के पास ही लाखों टन बमों जितने आणविक अस्त्र हैं । इसके अतिरिक्त, आज का जीवन ऐसा विकारी एवं तनावपूर्ण हो गया है कि अभी करोड़ों वर्षों तक कलियुग को मानना तो इन सभी बातों की ओर आँखें मूंदना ही है । परन्तु सभी को याद रहे कि परमात्मा अधर्म के महाविनाश से ही दैवी धर्म की पुन: स्थापना भी कराते हैं ।

अत: सभी को मालूम होना चाहिए कि अब परमप्रिय परमपिता परमात्मा शिव सतयुगी पावन एवं दैवी सृष्टि की पुन: स्थापना करा रहे हैं । वे मनुष्य को देवता अथवा पतितों को पावन बना रहे हैं । अत: अब उन द्वारा सहज राजयोग तथा ज्ञान– यह अनमोल विद्या सीखकर जीवन को पावन, सतोप्रधान दैवी तथा आनन्दमय बनाने का सर्वोत्तम पुरुषार्थ करना चाहिए । जो लोग यह समझ बैठे हैं कि अभी तो कलियुग में लाखों वर्ष शेष हैं, वे अपने ही सौभाग्य को स्वयं लौटा रहे हैं !

अब कलियुगी सृष्टि अन्तिम श्वास ले रही है, यह मृत्यु-शैया पर है । यह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रोगों द्वारा पीड़ित है । अत: इस सृष्टि की आयु अरबों वर्ष मानना भूल है और कलियुग को अब बच्चा मानकर अज्ञान-निद्रा में सोने वाले लोग 'कुम्भकरण' हैं । जो मनुष्य इस ईश्वरीय सन्देश को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं उन्हीं के कान ऐसे कुम्भ के समान हैं, क्योंकि कुम्भ बुद्धि-हीन होता है ।

क्या रावण के दस सिर थे, रावण किसका प्रतीक है?

भारत के लोग प्रतिवर्ष रावण का बुत जलाते हैं। उनका काफी विश्वास है कि एक दस सिर वाला रावण श्रीलंका का राजा था; वह एक बहुत बड़ा राक्षस था और उसने श्री सीता का अपहरण किया था। वे यह भी मानते हैं कि रावण बहुत बड़ा विद्वान था। इसीलिए वे उसके हाथ में वेद, शास्त्र इत्यादि दिखाते हैं। साथ ही वे उसके शीश पर गधे का सिर भी दिखाते हैं जिसका अर्थ वे यह लेते हैं कि वह हठी और मतिहीन था। लेकिन अब परमपिता परमात्मा शिव ने समझाया है कि रावण कोई दस शीश वाला राक्षस (मनुष्य) नहीं था, बल्कि रावण का पुतला वास्तव में बुराई का प्रतीक है। रावण के दस सिर पुरुष और स्त्री के पांच-पांच विकारों को प्रकट करते हैं और उसकी तुलना एक ऐसे समाज का प्रतिरूप है जो इस प्रकार के विकारी स्त्री-पुरुषों का बना हो। इस समाज के लोग बहुत ग्रन्थ व शास्त्र पढ़े हुए तथा विज्ञान में उच्च शिक्षा प्राप्त भी हो सकते हैं लेकिन वे हिंसा और अन्य विकारों के वशीभूत होते हैं। इस तरह उनकी विद्वता उन पर बोझ मात्र होती है। वे उद्दण्ड बन गए होते हैं और भलाई की बातों के लिए उनके कान बन्द हो गये होते हैं। 'रावण' शब्द का अर्थ ही है- जो दूसरों को रुलाने वाला है। अत: यह बुरे कर्मों का प्रतीक है क्योंकि बुरे कर्म ही तो मनुष्य के जीवन में दु:ख व आंसू लाते हैं। अतएव सीता के अपहरण का भाव वास्तव में आत्माओं की शुद्ध भावनाओं ही के अपहरण का सूचक है। इसी प्रकार, 'कुम्भकरण' आलस्य का तथा 'मेघनाद' कटु वचनों का प्रतीक है और यह सारा संसार ही एक महाद्वीप है अथवा मनुष्य का मन ही लंका है।

इस विचार से हम कह सकते हैं कि इस विश्व में द्वापर युग और कलियुग में (अर्थात् २५०० वर्षों) 'रावण-राज्य' होता है क्योंकि इन दो युगों में लोग माया या विकारों के वशीभूत होते हैं। उस समय अनेक पूजा-पाठ करने तथा शास्त्र पढ़ने के बाद भी मनुष्य विकारी, अधर्मी और भ्रष्टाचारी बन जाते हैं। रोग, शोक, अशान्ति और दु:ख का सर्वत्र बोलबाला होता है। मनुष्यों का खान-पान असुरों जैसा (मांस-मदिरा, तामसी भोजन आदि) बन जाता है। वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष आदि विकारों के वशीभूत होकर एक-दूसरे को दुख देते और रुलाते रहते हैं। ठीक इसके विपरीत, स्वर्ण युग और रजत युग में राम-राज्य था, क्योंकि परमात्मा, जिन्हें कि रमणीक अथवा सुखदाता होने के कारण 'राम' भी कहते हैं, ने उस पवित्रता, शान्ति और सुख-सम्पन्न दैवी स्वराज्य की पुन: स्थापना की थी। उस राम-राज्य के बारे में प्रसिद्ध है कि तब शहद और दूध की नदियां बहती थीं और शेर तथा गाय एक ही घाट पर पानी पीते थे।

अब वर्तमान युग में मनुष्यात्मायें फिर से माया अर्थात् रावण के प्रभाव में हैं। औद्योगिक उन्नति, प्रचुर धन-धान्य और सांसारिक सुख– सभी साधन होते हुए भी मनुष्य को सच्चे सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं है। घर-घर में कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़ा और दु:ख अशान्ति है तथा भ्रष्टाचार, मिलावट, अधर्म और असत्यता का ही राज्य है, तभी तो इसे 'रावण-राज्य' कहते हैं।

अब परमात्मा शिव गीता में दिये अपने वचन के अनुसार सहज ज्ञान और राजयोग की शिक्षा दे रहे हैं और मनुष्यात्माओं के मनोविकारों को खत्म करके उनमें दैवी गुण धारण करा रहे हैं (वे पुन: विश्व में बापू-गांधी जी के स्वप्नों के राम-राज्य की स्थापना करा रहे हैं)। अत: हम सबको सत्यधर्म और निर्विकारी मार्ग अपनाते हुए परमात्मा के इस महान् कार्य में सहयोगी बनना चाहिए।

क्या रावण के दस सिर थे? रावण किसका प्रतीक है?

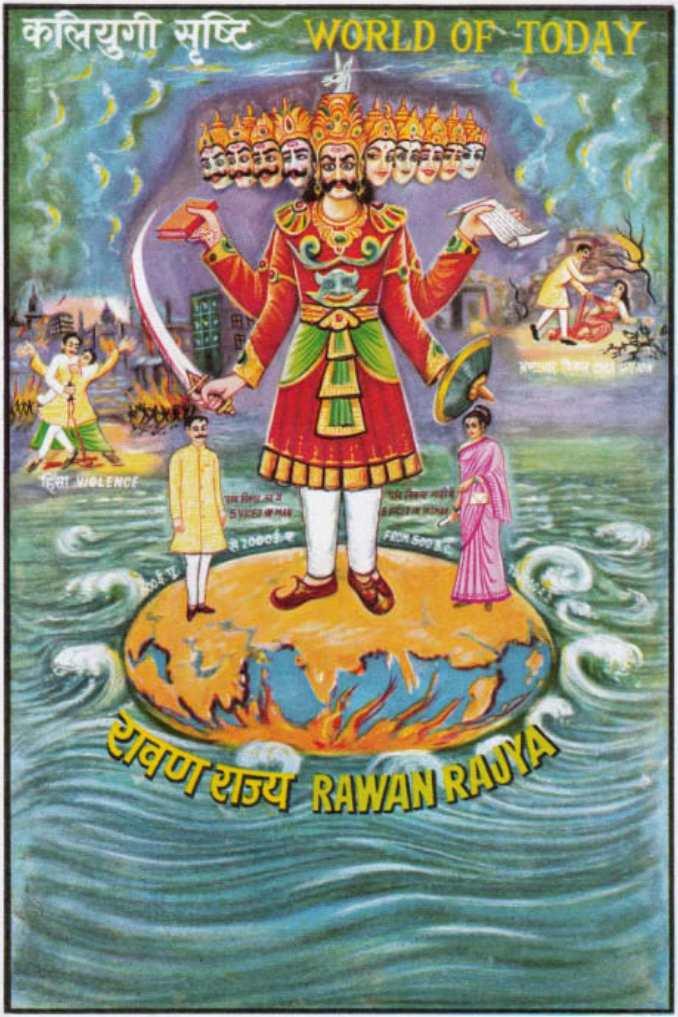

मनुष्य-जीवन का लक्ष्य क्या है?

मनुष्य-जीवन का लक्ष्य क्या है ?

मनुष्य का वर्तमान जीवन बड़ा अनमोल है क्योंकि अब संगम युग में ही वह सर्वोत्तम पुरुषार्थ करके जन्म-जन्मान्तर के लिए सर्वोत्तम प्रारब्ध बना सकता है और अतुल हीरों-तुल्य कमाई कर सकता है।

वह इसी जन्म में सृष्टि का मालिक अथवा जगत्-जीत बनने का पुरुषार्थ कर सकता है। परन्तु, आज मनुष्य को जीवन का लक्ष्य मालूम न होने के कारण वह सर्वोत्तम पुरुषार्थ करने की बजाय इसे विषय-विकारों में गँवा रहा है अथवा अल्पकाल की प्राप्ति मे ही लगा रहा है। आज वह लौकिक शिक्षा द्वारा वकील, डाक्टर, इंजीनियर बनने का पुरुषार्थ कर रहा है और कोई तो राजनीति में भाग लेकर देश का नेता, मन्त्री अथवा प्रधान-मंत्री बनने के प्रयत्न में लगा हुआ है। अन्य कोई इन सभी का संन्यास करके, 'संन्यासी' बनकर रहना चाहता है। परन्तु सभी जानते हैं कि मृत्युलोक में तो राजा-रानी, नेता, वकील, इंजीनियर, डाक्टर, संन्यासी इत्यादि कोई भी पूर्ण सुखी नहीं हैं। सभी को तन का रोग, मन की अशान्ति, धन की कमी, जनता की चिन्ता या प्रकृति के द्वारा कोई पीड़ा, कुछ-न-कुछ तो दुःख लगा ही हुआ है। अतः इनकी प्राप्ति से मनुष्य जीवन के लक्षय की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि मनुष्य तो सम्पूर्ण-पवित्रता, सदा सुख और स्थायी शान्ति चाहता है।

चित्र में अंकित किया गया है कि मनुष्य-जीवन का लक्ष्य जीवन-मुक्ति की प्राप्ति अथवा वैकुण्ठ में सम्पूर्ण सुख-शान्ति-सम्पन्न श्री नारायण या श्री लक्ष्मी पद की प्राप्ति ही है क्योंकि वैकुण्ठ के देवता तो अमर माने गये हैं, उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती ; उनकी काया सदा निरोगी होती है और उनके खजाने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होती। इसीलिए ही तो मनुष्य स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ को याद करते हैं और जब उनका कोई प्रिय सम्बंधी शरीर छोड़ता है तो वे कहते हैं कि- "वह स्वर्ग सिधार गया है।"

इस पद की प्राप्ति स्वयं परमात्मा ही ईश्वरीय विद्या द्वारा कराते हैं

इस लक्ष्य की प्राप्ति कोई मनुष्य अर्थात् कोइ साधु-संन्यासी, गुरु या जगद्गुरु नहीं करा सकता बल्कि यह दो ताजों वाला देव-पद अथवा राजा-रानी पद तो ज्ञान के सागर परमपिता परमात्मा शिव ही से प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग के अभ्यास से प्राप्त होता है।

अतः अब जबकि परमपिता परमात्मा शिव ने इस सर्वोत्तम ईश्वरीय विद्या की शिक्षा देने के लिए प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय की स्थापना की है तो सभी नर-नारियों को चाहिए कि वे अपने घर-गृहस्थ में रहते हुए, अपना कार्य-धन्धा करते हुए, प्रतिदिन एक-दो घण्टे निकालकर अपने भावी जन्म-जन्मान्तर के कल्याण के लिए इस सर्वोत्तम तथा सहज शिक्षा को प्राप्त करें।

इस विद्या की प्राप्ति के लिए तो कुछ भी खर्च करने की आवश्यकता नहीं है; इसलिए इसे तो निर्धन व्यक्ति भी प्राप्त कर अपना सौभाग्य बना सकते हैं। इस विद्या को तो कन्याओं, माताओं, वृद्ध-पुरुषों, छोटे बच्चों और अन्य सभी को प्राप्त करने का अधिकार है क्योंकि आत्मा की दृष्टि से तो सभी परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं।

अभी नहीं तो कभी नहीं

वर्तमान जन्म सभी का अन्तिम जन्म है। इसलिए, अब यह पुरुषार्थ न किया तो फिर यह कभी न हो सकेगा क्योंकि स्वयं ज्ञान-सागर परमात्मा द्वारा दिया हुआ यह मूल गीता-ज्ञान कल्प में एक ही बार इस कल्याणकारी संगम युग में ही प्राप्त हो सकता है।

निकट भविष्य में श्रीकृष्ण आ रहे हैं

प्रतिदिन समाचार-पत्रों में अकाल, बाढ़, भ्रष्टाचार व लड़ाई-झगड़े का समाचार पढ़ने को मिलता है। प्रकृति के पांच तत्व भी मनुष्य को दुःख दे रहे हैं और सारा ही वातावरण दूषित हो गया है। अत्याचार, विषय-विकार तथा अधर्म का ही बोलबाला है और यह विश्व ही 'कांटों का जंगल' बन गया है। एक समय था जबकि विश्व में सम्पूर्ण सुख-शान्ति का साम्राज्य था और यह सृष्टि 'फूलों का बगीचा' कहलाती थी। प्रकृति भी सतोप्रधान थी और किसी प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ नहीं थीं। मनुष्य भी सतोप्रधान, दैवी गुण सम्पन्न थे और आनन्द-खुशी से जीवन व्यतीत करते थे। उस समय यह संसार स्वर्ग था, जिसे सतयुग भी कहते हैं। इस विश्व में समृद्धि, सुख और शान्ति का मुख्य कारण था कि उस समय के राजा तथा प्रजा सभी पवित्र और श्रेष्ठाचारी थे। इसीलिए उनको सोने के रत्न-जड़ित ताज के अतिरिक्त पवित्रता का ताज भी दिखाया जाता है। श्रीकृष्ण तथा श्री राधा सतयुग के प्रथम महाराजकुमार और महाराजकुमारी थे जिनका स्वयंवर के पश्चात् 'श्री नारायण और श्री लक्ष्मी' नाम पड़ता है। उनके राज्य में 'शेर और गाय' भी एक घाट पानी पीते थे, अर्थात् पशु-पक्षी तक सम्पूर्ण अहिंसक थे। उस समय सभी श्रेष्ठाचारी, निर्विकारी अहिंसक और मर्यादा पुरुषोत्तम थे, तभी उन्हें 'देवता' कहते हैं। जबकि उसकी तुलना में आज का मनुष्य विकारी, दुःखी और अशान्त बन गया है। यह संसार भी रौरव नरक बन गया है। सभी नर-नारी काम-क्रोधादि विषय-विकारों में गोता लगा रहे हैं। सभी के कंधे पर माया का जुआ है तथा एक भी मनुष्य विकारों और दुःखों से मुक्त नहीं है।

अतः अब परमपिता, परम शिक्षक, परम सद्गुरु परमात्मा शिव कहते हैं, "हे बच्चो ! तुम सभी जन्म-जन्मान्तर से मुझे पुकारते आये हो कि - 'हे प्रभो, हमें दुःख और अशान्ति से छुड़ाओ और हमें मुक्तिधाम तथा स्वर्ग में ले चलो। अतः अब मैं तुम्हें वापस मुक्तिधाम ले चलने के लिये तथा इसी सृष्टि को पावन अथवा स्वर्ग बनाने आया हूँ। बच्चो, वर्तमान जन्म सभी का अन्तिम जन्म है। अब आप वैकुण्ठ (सतयुगी पावन सृष्टि) में चलने की तैयारी करो अर्थात् पवित्र और योग-युक्त बनो क्योंकि अब निकट भविष्य में श्रीकृष्ण (श्रीनारायण) का राज्य आने ही वाला है तथा इससे इस कलियुगी विकारी सृष्टि का महाविनाश एटम बमों, प्राकृतिक आपदाओं तथा गृह-युद्ध से हो जायेगा। चित्र में श्रीकृष्ण को 'विश्व के ग्लोब' के ऊपर मधुर बंशी बजाते हुए दिखाया है जिसका अर्थ यह है कि समस्त विश्व में 'श्रीकृष्ण' (श्रीनारायण) का एक छत्र राज्य होगा, एक धर्म होगा, एक भाषा और एक मत होगी तथा सम्पूर्ण खुशहाली, समृद्धि और सुख-चैन की बंशी बजेगी।

बहुत-से लोगों की यह मान्यता है कि श्रीकृष्ण द्वापर युग के अन्त में आते हैं। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि श्रीकृष्ण तो सर्वगुण सम्पन्न, सोलह कला सम्पूर्ण, सम्पूर्ण निर्विकारी एवं पूर्णतः पवित्र थे। तब भला उनका जन्म द्वापर युग की रजोप्रधान एवं विकार युक्त सृष्टि में कैसे हो सकता है ? श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए सूरदास ने अपनी अपवित्र दृष्टि को समाप्त करने की कोशिश की और श्रीकृष्ण-भक्तिन मीराबाई ने पवित्र रहने के लिए जहर का प्याला पीना स्वीकार किया; तब भला श्रीकृष्ण देवता अपवित्र दृष्टि-वृत्ति वाली सृष्टि में कैसे आ सकते हैं ? श्रीकृष्ण तो स्वयंवर के बाद श्रीनारायण कहलाये तभी तो श्रीकृष्ण के बुजुर्गी के चित्र नहीं मिलते। अतः श्रीकृष्ण अर्थात् श्रीनारायण सतयुगी पावन सृष्टि के प्रारम्भ में आये थे और अब पुनः आने वाले हैं।

निकट भविष्य में श्रीकृष्ण आ रहे हैं

सर्व-शास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भगवद्-गीता का ज्ञान-दाता कौन है?

श्री कृष्ण देवता और शिव परमात्मा हैं

SHRI KRISHNA IS A DEITY & SHIVA IS GOD

सर्वशास्त्र शिरोमणि श्रीमद् भगवद् गीता का ज्ञान-दाता कौन है ?

यह कितने आश्चर्य की बात है कि आज मनुष्यमात्र को यह भी मालूम नहीं कि परमप्रिय परमात्मा शिव, जिन्हें 'ज्ञान का सागर' तथा 'कल्याणकारी' माना जाता है, ने मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिए जो ज्ञान

दिया, उसका शास्त्र कौनसा है ? भारत में यद्यपि गीता ज्ञान को भगवान् द्वारा दिया हुआ ज्ञान माना जाता है, तो भी आज सभी लोग यही मानते हैं कि गीता-ज्ञान श्रीकृष्ण ने द्वापर युग के अन्त में युद्ध के मैदान में, अर्जुन के रथ पर सवार होकर दिया था ।

गीता-ज्ञान द्वापर युग में नहीं दिया गया बल्कि संगम युग में दिया गया

चित्र में यह अद्‌भुत रहस्य चित्रित किया गया है कि वास्तव में गीता-ज्ञान निराकार परमपिता परमात्मा शिव ने दिया था और फिर गीता-ज्ञान से सतयुग में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था । अत: गोपेश्वर परमपिता शिव श्रीकृष्ण के भी पारलौकिक पिता हैं और गीता श्रीकृष्ण की भी माता है ।

यह तो सभी जानते हैं कि गीता-ज्ञान देने का उद्देश्य पृथ्वी पर धर्म की पुन: स्थापना ही था । गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है कि "मैं अधर्म का विनाश तथा सत्यधर्म की स्थापनार्थ ही अवतरित होता हूँ ।" अत: भगवान के अवतरित होने तथा गीता-ज्ञान देने के बाद तो धर्म की तथा दैवी स्वभाव वाले सम्प्रदाय की पुन: स्थापना होनी चाहिये । परन्तु सभी जानते और मानते हैं कि द्वापर युग के बाद तो कलियुग ही शुरू हुआ जिसमें तो धर्म की अधिक हानि हुई और मनुष्यों का स्वभाव तमोप्रधान अथवा आसुरी ही हुआ । अत: जो लोग यह मानते हैं कि भगवान ने गीता ज्ञान द्वापर युग के अन्त में दिया, उन्हें सोचना चाहिए कि क्या गीता-ज्ञान देने और भगवान के अवतरित होने का यही फल हुआ ? क्या गीता-ज्ञान देने के बाद अधर्म का युग प्रारम्भ हुआ ? स्पष्ट है कि उनका विवेक इस प्रश्न का उत्तर 'न' शब्द से ही देगा ।

भगवान के अवतरण के बाद कलियुग का प्रारम्भ मानना तो भगवान की ग्लानि करना है क्योंकि भगवान का यथार्थ परिचय तो यह है कि वे अवतरित होकर पृथ्वी को असुरों से खाली करते हैं और यहां धर्म को पूर्ण कलाओं सहित स्थापित करके तथा नर को श्रीनारायण बनाकर मनुष्य की सद्‌गति करते हैं । भगवान् तो सृष्टि के 'बीज रूप' तथा स्वरूप हैं, अत: इसी धरती पर उनके आने के पश्चात् तो नये सृष्टि-वृक्ष, अर्थात् नई सतयुगी सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है । इसके अतिरिक्त, यदि द्वापर के अन्त में गीता-ज्ञान दिया गया होता तो कलियुग के तमोप्रधान काल में तो उसकी प्रारब्ध ही न भोगी जा सकती । आज भी आप देखते हैं कि दीवाली के दिनों में श्री लक्ष्मी का आह्वान करने के लिए भारतवासी अपने घरों को साफसुथरा करते हैं तथा दीपक आदि जलाते हैं । इससे स्पष्ट है कि अपवित्रता और अन्धकार वाले स्थान पर तो देवता अपने चरण भी नहीं धरते । अत: श्रीकृष्ण का अर्थात् लक्ष्मीपति श्रीनारायण का जन्म द्वापर में मानना महान भूल है । उनका जन्म तो सतयुग में हुआ जबकि सभी मित्र-सम्बन्धी तथा प्रकृति-पदार्थ सतोप्रधान एवं दिव्य थे और सभी का आत्मा-रूपी दीपक जगा हुआ था और सृष्टि में कोई भी म्लेच्छ तथा क्लेश न था ।

अत: उपर्युक्त से स्पष्ट है कि न तो श्रीकृष्ण ही द्वापर युग में हुए और न ही गीता-ज्ञान द्वापर युग के अन्त में दिया गया बल्कि निराकार, पतितपावन परमात्मा शिव ने कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि के संगम समय, धर्म-ग्लानि के समय, ब्रह्मा तन में दिव्य-जन्म लिया और गीता-ज्ञान देकर सतयुग की तथा श्रीकृष्ण (श्रीनारायण) के स्वराज्य की स्थापना की । श्रीकृष्ण के तो अपने माता-पिता, शिक्षक थे परन्तु गीता-ज्ञान सर्व आत्माओं के माता-पिता शिव ने दिया ।

गीता-ज्ञान हिंसक युद्ध करने के लिए नहीं दिया गया था

आज परमात्मा के दिव्य जन्म और 'रथ' के स्वरूप को न जानने के कारण लोगों की यह मान्यता दृढ़ है कि गीता-ज्ञान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ में सवार होकर लड़ाई के मैदान में दिया। आप ही सोचिए कि जबकि अहिंसा को धर्म का परम लक्षण माना गया है और जबकि धर्मात्मा अथवा महात्मा लोग भी अहिंसा का पालन करते तथा अहिंसा की शिक्षा देते हैं तब क्या भगवान ने भला किसी हिंसक युद्ध के लिये किसी को शिक्षा दी होगी ? जबकि लौकिक पिता भी अपने बच्चों को यह शिक्षा देता है कि परस्पर न लड़ो तो क्या सृष्टि के परमपिता, शान्ति के सागर परमात्मा ने मनुष्यों को परस्पर लड़ाया होगा ! यह तो कदापि नहीं हो सकता। भगवान तो दैवी स्वभाव वाले सम्प्रदाय की तथा सर्वोत्तम धर्म की स्थापना के लिए ही गीता-ज्ञान देते हैं और उससे तो मनुष्य राग-द्वेष, हिंसा और क्रोध इत्यादि पर विजय प्राप्त करते हैं। अतः वास्तविकता यह है कि निराकार परमपिता परमात्मा शिव ने इस सृष्टि रूपी कर्मक्षेत्र अथवा कुरुक्षेत्र पर, प्रजापिता ब्रह्मा (अर्जुन) के शरीर रूपी रथ में सवार होकर माया अर्थात् विकारों ही से युद्ध करने की शिक्षा दी थी, परन्तु लेखक ने बाद में अलंकारिक भाषा में इसका वर्णन किया तथा चित्रकारों ने बाद में शरीर को रथ के रूप में अंकित करके प्रजापिता ब्रह्मा की आत्मा को भी उस रथ में एक मनुष्य (अर्जुन) के रूप में चित्रित किया। बाद में वास्तविक रहस्य प्रायःलुप्त अथवा गौण हो गया और स्थूल अर्थ ही प्रचलित हो गया।

संगम युग में भगवान् शिव ने जब प्रजापिता ब्रह्मा के तन रूपी रथ में अवतरित होकर ज्ञान दिया और धर्म की स्थापना की, तब उसके पश्चात् कलियुगी सृष्टि का महाविनाश हो गया और सतयुग स्थापन हुआ। अतः इस सर्व-महान् परिवर्तन के कारण बाद में यह वास्तविक रहस्य प्रायलुप्त हो गया। फिर जब द्वापर युग के भक्ति काल में गीता लिखी गयी तो बहुत पहले (संगम युग में) हो चुके इस वृतान्त का जो रूपान्तर व्यास ने वर्तमान काल (Present tense) का प्रयोग करके किया तो समयान्तर में गीता-ज्ञान को भी व्यास के जीवन-काल में, अर्थात् 'द्वापर युग' में दिया गया ज्ञान मान लिया। परन्तु इस भूल से संसार में बहुत बड़ी हानि हुई है क्योंकि यदि लोगों को यह रहस्य ठीक रीति से मालूम होता कि गीता-ज्ञान निराकार परमपिता परमात्मा शिव ने दिया था जो कि श्रीकृष्ण के भी परलौकिक पिता हैं और सभी धर्मों के अनुयायियों के परमपूज्य तथा सबके एक-मात्र सद्गति-दाता तथा राज्य-भाग्य देने वाले हैं, तो सभी धर्मों के अनुयायी गीता को ही संसार का सर्वोत्तम शास्त्र मानते और उनके महावाक्यों को परमपिता के महावाक्य मानकर उनको शिरोधार्य करते और वे भारत को ही अपना सर्वोत्तम तीर्थ मानते तथा शिव-जयन्ती को गीता-जयन्ती तथा गीता-जयन्ती को शिव-जयन्ती के रूप में भी मानते। वे एक ज्योतिस्वरूप, निराकार परमपिता, परमात्मा शिव ही से योग-युक्त होकर पावन बन जाते तथा उससे सुख-शान्ति की पूर्ण विरासत ले लेते। परन्तु आज उपर्युक्त सर्वोत्तम रहस्यों को न जानने के कारण और गीता माता के पति सर्वमान्य निराकार परमात्मा शिव के स्थान पर गीता-पुत्र श्रीकृष्ण देवता का नाम लिख देने के कारण गीता का ही खण्डन हो गया है और संसार में घोर अनर्थ, हाहाकार तथा पापाचार हो गया है और लोग एक निराकार परमपिता की आज्ञा ('मन्मना भव' अर्थात् एक मुझ ही को याद करो) को भूलकर व्यभिचारी बुद्धि वाले हो गये हैं ! ! आज फिर से उपर्युक्त रहस्य को जानकर परमपिता परमात्मा शिव से योग-युक्त होने से पुनः इस भारत में श्रीकृष्ण अथवा श्रीनारायण का सुखदायी स्वराज्य स्थापन हो सकता है और हो रहा है।

गीता-ज्ञान हिंसक युद्ध करने के लिये नहीं दिया गया था

जीवन को कमल-पुष्प समान कैसे बनायें?

जीवन कमल-पुष्प समान कैसे बनायें ?

स्नेह और सौहार्द के अभाव के कारण आज मनुष्य को घर में घर-जैसा अनुभव नहीं होता । एक मामूली कारण से घर का पूरा वातावरण बिगड़ जाता है । अब मनुष्य की वफादारी और विश्वासपात्रता भी टिकाऊ और दृढ़ नहीं रहे । नैतिक मूल्य अपने स्तर से काफी गिर गए हैं । कार्यालय हो या व्यवसाय, घर हो या रसोई, अब हर जगह परस्पर सम्बन्धों को सुधारने, स्वयं को उसमें ढालने और मिलजुल कर चलने की ज़रूरत है । अपनी स्थिति को निर्दोष एवं संतुलित बनाये रखने के लिए हर मानव को आज बहुत मनोबल इकट्ठा करने की आवश्यकता है । इसके लिए योग बहुत सहायक हो सकता है ।

जो ब्रह्माकुमार हैं, वे दूसरों को भी शान्ति का मार्ग दर्शाना एक सेवा अथवा अपना कर्त्तव्य समझते हैं । ब्रह्माकुमार जन-जन को यह ज्ञान दे रहा है कि 'शान्ति' पवित्र जीवन का एक फल है और पवित्रता एवं शान्ति के लिए परमपिता परमात्मा का परिचय तथा उनके साथ मन का नाता जोड़ना ज़रूरी है । अत: वह उन्हें राजयोग-केन्द्र अथवा ईश्वरीय मनन-चिन्तन केन्द्र पर पधारने के लिए आमंत्रित करता है, जहाँ उन्हें यह आवश्यक ज्ञान दिया जाता है कि राजयोग का अभ्यास कैसे करें और जीवन को कमल-पुष्प के समान कैसे बनायें । इस ज्ञान एवं योग को समझने का फल यह होता है कि कोई कार्यालय में काम कर रहा हो या रसोई में कार्यरत हो, तो भी मनुष्य शान्ति के सागर परमात्मा के साथ स्वयं का सम्बन्ध स्थापित कर सकता है । इस सब का श्रेष्ठ परिणाम यह होता है कि सारा परिवार प्यार और शान्ति के सूत्र में पिरो जाता है, वे सभी वातावरण में आनन्द एवं शान्ति का अनुभव करते हैं और अब वह परिवार एक सुव्यवस्थित एवं संगठित परिवार बन जाता है ।

दिव्य ज्ञान के द्वारा मनुष्य विकार तो छोड़ देता है और गुण धारण कर लेता है । इसके लिए, जिस मनोबल की ज़रूरत है वह मनुष्य को योग से मिलता है । इस प्रकार मनुष्य अपने जीवन को कमल-पुष्प के समान बनाने के योग्य हो जाता है ।

कमल की यह विशेषता है कि वह जल में रहते हुए भी जल से न्यारा होकर रहता है । हालाँकि कमल के अन्य सम्बन्धी, जैसे कि कमल-ककड़ी, कमल-डोडा इत्यादि हैं, परन्तु फिर भी कमल उन सभी से ऊपर उठकर रहता है । इसी प्रकार हमें भी अपने सम्बन्धियों एवं मित्रजनों के बीच रहते हुए भी उनसे न्यारा, अर्थात् मोहजीत होकर रहना चाहिये ।

कुछ लोग कहते हैं कि गृहस्थ में ऐसा होना असम्भव है । परन्तु हम देखते हैं कि अस्पताल में नर्स अनेक बच्चों को संभालते हुए भी उनमें मोह-रहित होती है । ऐसे ही हमें भी चाहिये कि हम सभी को परमपिता परमात्मा के वत्स मान कर न्यासी (Trustee) होकर उनसे व्यवहार करें । एक न्यायाधीश भी खुशी या ग़मी के निर्णय सुनाता है परन्तु वह स्वयं उनके प्रभावाधीन नहीं होता । ऐसे ही हम भी सुख-दु:ख की परिस्थितियों में साक्षी होकर रहें, इसी के लिए हमें सहज राजयोग सीखने की आवश्यकता है ।

राजयोग का आधार तथा विधि

सम्पूर्ण स्थिति को प्राप्त करने के लिए और शीघ्र ही आध्यात्मिकता में उन्नति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को राजयोग के निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है, अर्थात् चलते-फिरते और कार्य-व्यवहार करते हुए भी परमात्मा की स्मृति में स्थित होने की ज़रूरत है।

यद्यपि निरन्तर योग के बहुत लाभ हैं और निरन्तर योग द्वारा ही मनुष्य सर्वोत्तम अवस्था को प्राप्त कर सकता है तथापि विशेष रूप से योग में बैठना आवश्यक है। इसीलिये चित्र में दिखाया गया है कि परमात्मा को याद करते समय हमें अपनी बुद्धि सब तरफ से हटाकर एक ज्योतिर्बिन्दु परमात्मा शिव से जुटानी चाहिए। मन चंचल होने के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार अथवा शास्त्र और गुरुओं की तरफ भागता है। लेकिन अभ्यास के द्वारा हमें इसको एक परमात्मा की याद में ही स्थित करना है। अत: देह-सहित देह के सर्व सम्बन्धों को भूलकर आत्म- स्वरूप में स्थित होकर, बुद्धि में ज्योतिर्बिन्दु परमात्मा शिव की स्नेहयुक्त स्मृति में रहना ही वास्तविक योग है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

कई मनुष्य योग को बहुत कठिन समझते हैं, वे कई प्रकार की हठ क्रियाएं तप अथवा प्राणायाम करते रहते हैं। लेकिन वास्तव में 'योग' अति सहज है। जैसे कि एक बच्चे को अपने देहधारी पिता की सहज और स्वत: ही याद रहती है वैसे ही आत्मा को अपने पिता परमात्मा की याद स्वत: और सहज होनी चाहिए। इस अभ्यास के लिए यह सोचना चाहिए कि- "मैं एक आत्मा हूं, मैं ज्योति-बिन्दु परमात्मा शिव की अविनाशी संतान हूं जो परमपिता ब्रह्मलोक के वासी हैं, शांति के सागर, आनन्द के सागर प्रेम के सागर और सर्वशक्तिमान् हैं ....।" ऐसा मनन करते हुए मन को ब्रह्मलोक में परमपिता परमात्मा शिव पर स्थित करना चाहिए और परमात्मा के दिव्य-गुणों और कर्तव्यों का ध्यान करना चाहिए।

जब मन इस प्रकार की स्मृति में स्थित होगा तब सांसारिक सम्बन्धों अथवा वस्तुओं का आकर्षण अनुभव नहीं होगा। जितना ही परमात्मा द्वारा सिखाये गये ज्ञान में निश्चय होगा, उतना ही सांसारिक विचार और लौकिक सम्बन्धियों की याद मन में नहीं आयेगी और उतना ही अपने स्वरूप का और परमप्रिय परमात्मा के गुणों का अनुभव होगा।

आज बहुत-से लोग कहते हैं कि हमारा मन परमात्मा की स्मृति में नहीं टिकता अथवा हमारा योग नहीं लगता। इसका एक कारण तो यह है कि वे 'आत्म-निश्चय' में स्थित नहीं होते। आप जानते हैं कि जब बिजली के दो तारों को जोड़ना होता है तब उनके ऊपर के रबड़ को हटाना पड़ता है, तभी उनमें करैन्ट आता है। इसी प्रकार, यदि कोई निज देह के भान में होगा तो उसे भी अव्यक्त अनुभूति नहीं होगी, उसके मन की तार परमात्मा से नहीं जुड़ सकती।

दूसरी बात यह है कि वे तो परमात्मा को नाम-रूप से न्यारा व सर्वव्यापक मानते हैं, अत: वे मन को कोई ठिकाना भी नहीं दे सकते। परन्तु अब तो यह स्पष्ट किया गया है कि परमात्मा का दिव्य नाम शिव, दिव्य-रूप ज्योति-बिन्दु और दिव्यधाम परमधाम अथवा ब्रह्मलोक है। अत: वहां मन को टिकाया जा सकता है।

तीसरी बात यह है कि उन्हें परमात्मा के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध का भी परिचय नहीं है, इसी कारण परमात्मा के प्रति उनके मन में निकट्य तथा घनिष्ट स्नेह नहीं। अब यह ज्ञान हो जाने पर हमें ब्रह्मलोक के वासी परमप्रिय परमपिता शिव—ज्योति-बिन्दु की स्मृति में रहना चाहिये।

राजयोग का आधार और विधि

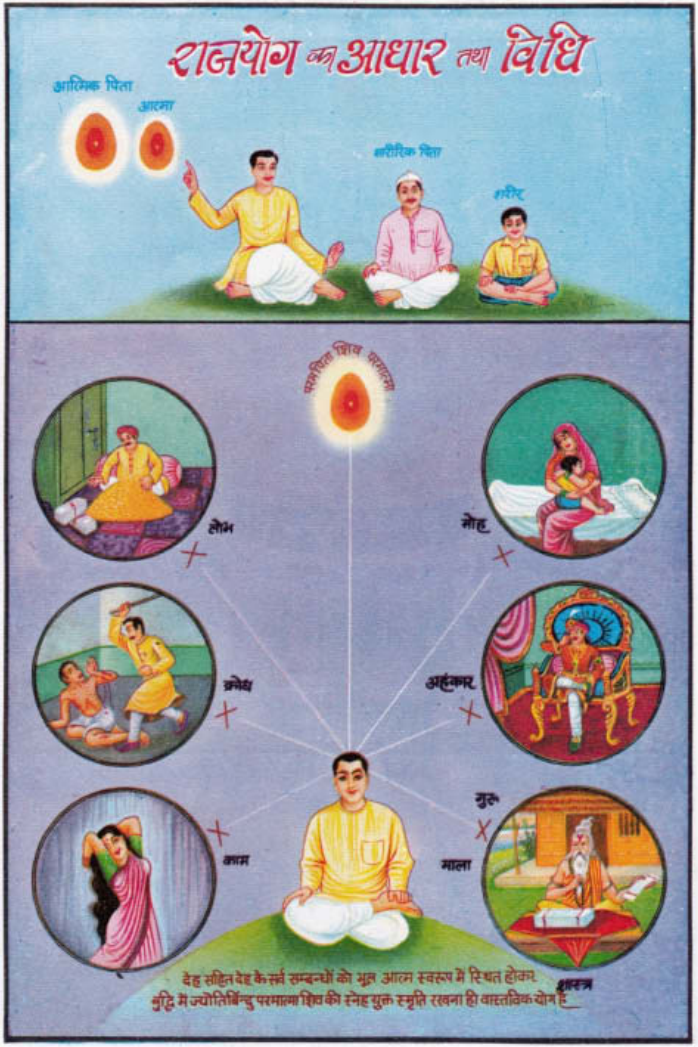

राजयोग के स्तम्भ अथवा नियम

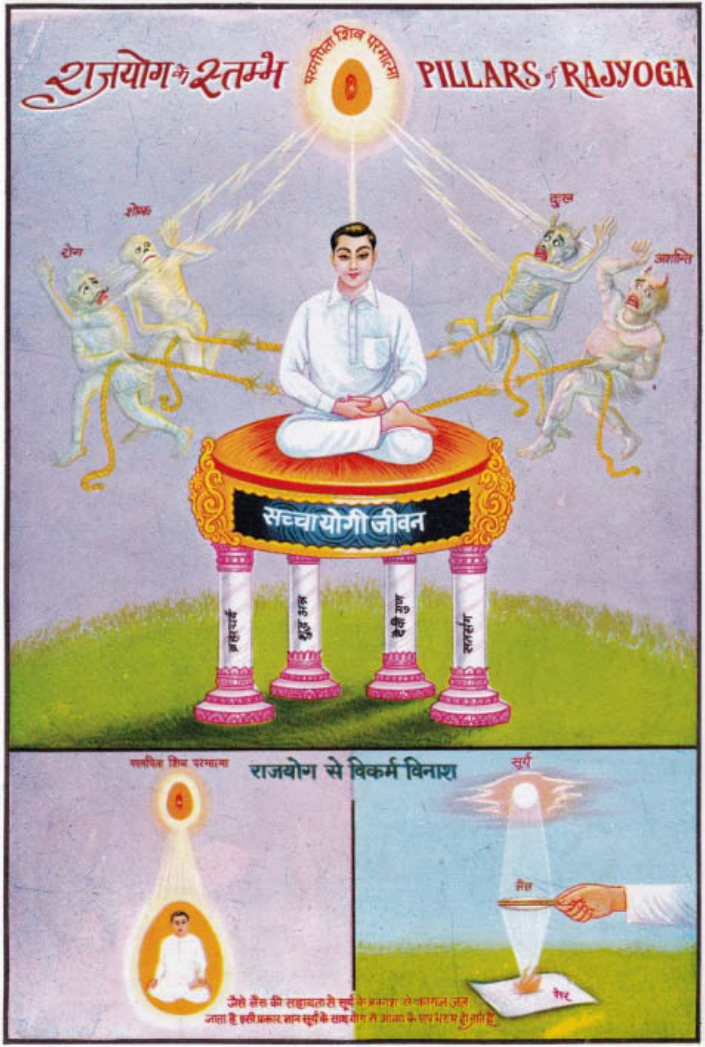

राजयोग के स्तम्भ अथवा नियम

वास्तव में 'योग' का अर्थ – ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर, सर्वशक्तिवान, पतितपावन परमात्मा शिव के साथ आत्मा का सम्बन्ध जोड़ना है ताकि आत्मा को भी शान्ति, आनन्द, प्रेम, पवित्रता, शक्ति और दिव्यगुणों की विरासत प्राप्त हो।

योग के अभ्यास के लिए उसे आचरण सम्बन्धी कुछ नियमों का अथवा दिव्य अनुशासन का पालन करना होता है क्योंकि योग का उद्देश्य मन को शुद्ध करना, दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना और मनुष्य के चित्त को सदा प्रसन्न अथवा हर्ष-युक्त बनाना है। दूसरे शब्दों में योग की उच्च स्थिति किन्हीं आधारभूत स्तम्भों पर टिकी होती है।

इनमें से एक है—ब्रह्मचर्य या पवित्रता। योगी शारीरिक सुन्दरता या वासना-भोग की ओर आकर्षित नहीं होता क्योंकि उसका दृष्टिकोण बदल चुका होता है। वह आत्मा की सुन्दरता को ही पूर्ण महत्त्व देता है। उसका जीवन 'ब्रह्मचर्य' शब्द के वास्तविक अर्थ में ढला होता है। अर्थात् उसका मन ब्रह्म में स्थित होता है और वह देह की अपेक्षा विदेही (आत्माभिमानी) अवस्था में रहता है। अतः वह सबको भाई-भाई के रूप में देखता है और आत्मिक प्रेम व सम्बन्ध का ही आनन्द लेता है। यहां आत्मिक स्मृति और ब्रह्मचर्य इसे बहुत ही महान् शारीरिक शक्ति, कार्य-क्षमता, नैतिक ब ा और आत्मिक शक्ति देते हैं। यह उसके मनोबल को बढ़ाते हैं और उसे निर्णय शक्ति, मानसिक सन्तुलन और कुशलता देते हैं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है—सात्विक आहार। मनुष्य जो आहार करता है उसका उसके मस्तिष्क पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। इसलिए योगी मांस, अण्डे उत्तेजक पेय या तम्बाकू नहीं लेता। अपना पेट पालने के लिए वह अन्य जीवों की हत्या नहीं करता, न ही वह अनुचित साधनों से धन कमाता है। वह पहले भगवान को भोग लगाता है और तब प्रसाद के रूप में उसे ग्रहण करता है। भगवान द्वारा स्वीकृत वह भोजन उसके मन को शान्ति व पवित्रता देता है, तभी 'जैसा अन्न वैसा मन' की कहावत के अनुसार उसका मन शुद्ध होता है और उसकी कामना कल्याणकारी तथा भावना शुभ बनी रहती है।

अन्य महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है-'सत्संग'। जैसा संग वैसा रंग' – इस कहावत के अनुसार योगी सदा इस बात का ध्यान रखता है कि उसका सदा 'सत-चित्-आनन्द' स्वरूप परमात्मा के साथ ही संग बना रहे। वह कभी भी कुसंग में अथवा अश्लील साहित्य अथवा कुविचारों में अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाता। वह एक ही प्रभु की याद व लगन में मग्न रहता है तथा अज्ञानी, मिथ्या-अभिमानी अथवा विकारी, देहधारी मनुष्यों को याद नहीं करता और न ही उनसे सम्बन्ध जोड़ता है। चौथा स्तम्भ है– दिव्यगुण। योगी सदा अन्य आत्माओं को भी अपने दिव्य-गुणों, दिव्य-विचार तथा दिव्य-कर्मों की सुगन्ध से अगरबत्ती की तरह सुगन्धित करता रहता है, न कि आसुरी स्वभाव, विचार व कर्मों के वशीभूत होता है। विनम्रता, सन्तोष, हर्षितमुखता, गम्भीरता, अन्तर्मुखता, सहनशीलता और अन्य दिव्य-गुण योग का मुख्य आधार हैं। योगी स्वयं तो इन गुणों को धारण करता ही है, साथ ही अन्य दुःखी भूली-भटकी और अशान्त आत्माओं को भी अपने गुणों का दान करता है और उनके जीवन में सच्ची सुख-शान्ति प्रदान करता है। इन नियमों को पालन करने से ही मनुष्य सच्चा योगी जीवन बना सकता है तथा रोग, शोक, दुःख व अशान्ति रूपी भूतों के बन्धन से छुटकारा पा सकता है।

राजयोग से प्राप्ति -- अष्ट शक्तियाँ

राजयोग के अभ्यास से, अर्थात् मन का नाता परमपिता परमात्मा के साथ जोड़ने से, अविनाशी सुख-शान्ति की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही कई प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियां भी आ जाती हैं। इनमें से आठ मुख्य और बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

इनमें से एक है **'सिकोड़ने और फैलाने की शक्ति'**। जैसे कछुआ अपने अंगों को जब चाहे सिकोड़ लेता है, जब चाहे उन्हें फैला लेता है, वैसे ही राजयोगी जब चाहे अपनी इच्छानुसार अपनी कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्म करता है और जब चाहे विदेही एवं शान्त अवस्था में रह सकता है। इस प्रकार की विदेही अवस्था रहने से उस पर माया का वार नहीं होगा।

दूसरी शक्ति है- **'समेटने की शक्ति'**। इस संसार को मुसाफिरखाना तो सभी कहते हैं लेकिन व्यवहारिक जीवन में वे इतना तो विस्तार कर लेते हैं कि अपने कार्य और बुद्धि को समेटना चाहते हुए भी समेट नहीं पाते, जबकि योगी अपनी बुद्धि को इस विशाल दुनिया में न फैला कर एक परमपिता परमात्मा की तथा आत्मिक सम्बन्ध की याद में ही अपनी बुद्धि लगाये रखता है। वह कलियुगी संसार से अपनी बुद्धि और संकल्पों का बिस्तरा व पेटी समेट कर सदा अपने घर—परमधाम—में चलने को तैयार रहता है। तीसरी शक्ति है **'सहन शक्ति'**। जैसे वृक्ष पर पत्थर मारने पर भी मीठे फल देता है और अपकार करने वाले पर भी उपकार करता है, वैसे ही एक योगी भी सदा अपकार करने वालों के प्रति सदा शुभ भावना और कामना ही रखता है।

योग से जो चौथी शक्ति प्राप्त होती है वह है 'समाने की शक्ति'। योग का अभ्यास मनुष्य की बुद्धि विशाल बना देता है और मनुष्य गम्भीरता और मर्यादा का गुण धारण करता है। थोड़ी-सी खुशियां, मान-पद पाकर वह अभिमानी नहीं बन जाता और न ही किसी प्रकार की कमी आने पर या हानि होने के अवसर पर दु:खी होता है। वह तो समुद्र की तरह सदा अपनी दैवी कुल की मर्यादा में बंधा रहता है और गम्भीर अवस्था में रहकर दूसरी आत्माओं के अवगुणों को न देखते हुए केवल उनसे गुण ही धारण करता है।

योग से अन्य शक्ति जो मिलती है, वह है **'परखने की शक्ति'**। जैसे एक पारखी (जौहरी) आभूषणों को कसौटी पर परखकर उसकी असल और नकल को जान जाता है, ऐसे ही योगी भी, किसी भी मनुष्यात्मा के सम्पर्क में आने से उसको परख लेता है और उससे सच्चाई या झूठ कभी छिपा नहीं रह सकता। वह तो सदा सच्चे ज्ञान-रत्नों को ही अपनाता है तथा अज्ञानता के झूठे कंकड़, पत्थरों में अपनी बुद्धि नहीं फंसाता।

एक योगी को महान् **'निर्णय-शक्ति'** भी स्वत: ही प्राप्त हो जाती है। वह उचित और अनुचित बात का शीघ्र ही निर्णय कर लेता है। वह व्यर्थ संकल्प और परचिन्तन से मुक्त होकर सदा प्रभुचिन्तन में रहता है। योग के अभ्यास से मनुष्य को **'सामना करने की शक्ति'** भी प्राप्त होती है। यदि उसके सामने अपने निकट सम्बन्धी की मृत्यु-जैसी आपदा आ भी जाये अथवा सांसारिक समस्याएं तूफान का रूप भी धारण कर लें तो भी वह कभी विचलित नहीं होता और उसका आत्मा रूपी दीपक सदा ही जलता रहता है तथा अन्य आत्माओं को ज्ञान-प्रकाश देता रहता है।

अन्य शक्ति, जो योग के अभ्यास से प्राप्ति होती है, वह है **'सहयोग की शक्ति'**। एक योगी अपने तन,मन,धन से तो ईश्वरीय सेवा करता ही है, साथ ही उसे अन्य आत्माओं का भी सहयोग स्वत: ही प्राप्त हो जाता है, जिस कारण वे कलियुगी पहाड़ (विकारी संसार) को उठाने में अपनी पवित्र जीवन रूपी अंगुली देकर स्वर्ग की स्थापना के पहाड़ समान कार्य में सहयोगी बन जाते हैं।

राजयोग से प्राप्ति – अष्ट शक्तियाँ

राजयोग की यात्रा – स्वर्ग की ओर दौड़

राजयोग की यात्रा – स्वर्ग की ओर दौड़

राजयोग के निरन्तर अभ्यास से मनुष्य को अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इन शक्तियों के द्वारा ही मनुष्य सांसारिक रूकावटों को पार करता हुआ आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर होता है। आज मनुष्य अनेक प्रकार के रोग, शोक, चिन्ता और परेशानियों से ग्रसित हैं और यह सृष्टि ही घोर नरक बन गई है। इससे निकलकर स्वर्ग में जाना हर एक प्राणी चाहता है लेकिन नर्क से स्वर्ग की ओर का मार्ग कई रुकावटों से युक्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार उसके रास्ते में मुख्य बाधा डालते हैं। पुरुषोत्तम संगम युग में ज्ञान सागर परमात्मा शिव जो सहज राजयोग की शिक्षा प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा दे रहे हैं, उसे धारण करने से ही मनुष्य इन प्रबल शत्रुओं (५ विकारों) को जीत सकता है।

चित्र में दिखाया है कि नरक से स्वर्ग में जाने के लिए पहले-पहले मनुष्य को काम विकार की ऊंची दीवार को पार करना पड़ता है जिसमें नुकीले शीशों की बाढ़ लगी हुई है। इसको पार करने में कई व्यक्ति देह-अभिमान के कारण से सफलता नहीं पा सकते हैं और इसीलिये नुकीले शीशों पर गिरकर लहू-लुहान हो जाते हैं। विकारी दृष्टि, कृति, वृत्ति ही मनुष्य को इस दीवार को पार नहीं करने देती। अत: पवित्र दृष्टि (Civil Eye) बनाना इन विकारों को जीतने के लिये अति आवश्यक है।

दूसरा भयंकर विघ्न क्रोध रूपी अग्नि-चक्र है। क्रोध के वश होकर मनुष्य सत्य और असत्य की पहचान भी नहीं कर पाता है और साथ ही उसमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि विकारों का समावेश हो जाता है जिसकी अग्नि में वह स्वयं तो जलता ही है साथ में अन्य मनुष्यों को भी जलाता है। इस बाधा को पार करने के लिये 'स्वधर्म' में अर्थात् 'मैं आत्मा शान्त स्वरूप हूँ'- इस स्थिति में स्थित होना अत्यावश्यक है। लोभ भी मनुष्य को उसके सत्य पथ से परे हटाने के लिये मार्ग में खड़ा है। लोभी मनुष्य को कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती और वह मन को परमात्मा की याद में नहीं टिका सकता। अत: स्वर्ग की प्राप्ति के लिये मनुष्य को धन व खज़ाने के लालच और सोने की चमक के आकर्षण पर भी जीत पानी है।

मोह भी एक ऐसी बाधा है जो जाल की तरह खड़ी रहती है। मनुष्य मोह के कड़े बन्धन-वश, अपने धर्म व कार्य को ही भूल जाता है और पुरुषार्थ-हीन बन जाता है। तभी गीता में भगवान् ने कहा है कि 'नष्टोमोहा स्मृतिर्लब्धा:' बनो, अर्थात् देह सहित देह के सर्व सम्बन्धों के मोह-जाल से निकल कर परमात्मा की याद में स्थित हो जाओ और अपने कर्त्तव्य को करो, इससे ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकेगी। इसके लिये आवश्यक है कि मनुष्यात्मा मोह के बन्धनों से मुक्ति पाये, तभी माया के बन्धनों से छुटकारा मिलेगा और स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

अहंकार भी मनुष्य की उन्नति के मार्ग में पहाड़ की तरह रुकावट डालता है। अहंकारी मनुष्य कभी भी परमात्मा के निकट नहीं पहुंच सकता है। अहंकार के वश मनुष्य पहाड़ की ऊंची चोटी से गिरने के समान चकनाचूर हो जाता है। अत: स्वर्ग में जाने के लिए अहंकार को भी जीतना अति आवश्यक है। अत: याद रहे कि इन विकारों पर विजय प्राप्त करके मनुष्य से देवता बनने वाले ही नर-नारी स्वर्ग में जा सकते हैं, वरना हर एक व्यक्ति के मरने के बाद जो यह कह दिया जाता है कि 'वह स्वर्गवासी हुआ', यह सरासर गलत है। यदि हर कोई मरने के बाद स्वर्ग जा रहा होता तो जन-संख्या कम हो जाती और स्वर्ग में भीड़ लग जाती और मृतक के सम्बन्धी मातम न करते।

गीता ज्ञान कब क्यों और किसके द्वारा दिया गया?

GITA KNOWLEDGE – WHEN, WHY & BY WHOM?

FEARLESSNESS
निर्भयता
INTROVERTNESS
PATIENCE
धैर्यता
PURITY
पवित्रता
HUMILITY
नम्रता
SWEETNESS
मधुरता
TOLERANCE
हर्षितमुखता
CHEERFULNESS
दिव्य गुण
DIVINE VIRTUES